॥ २७ ॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

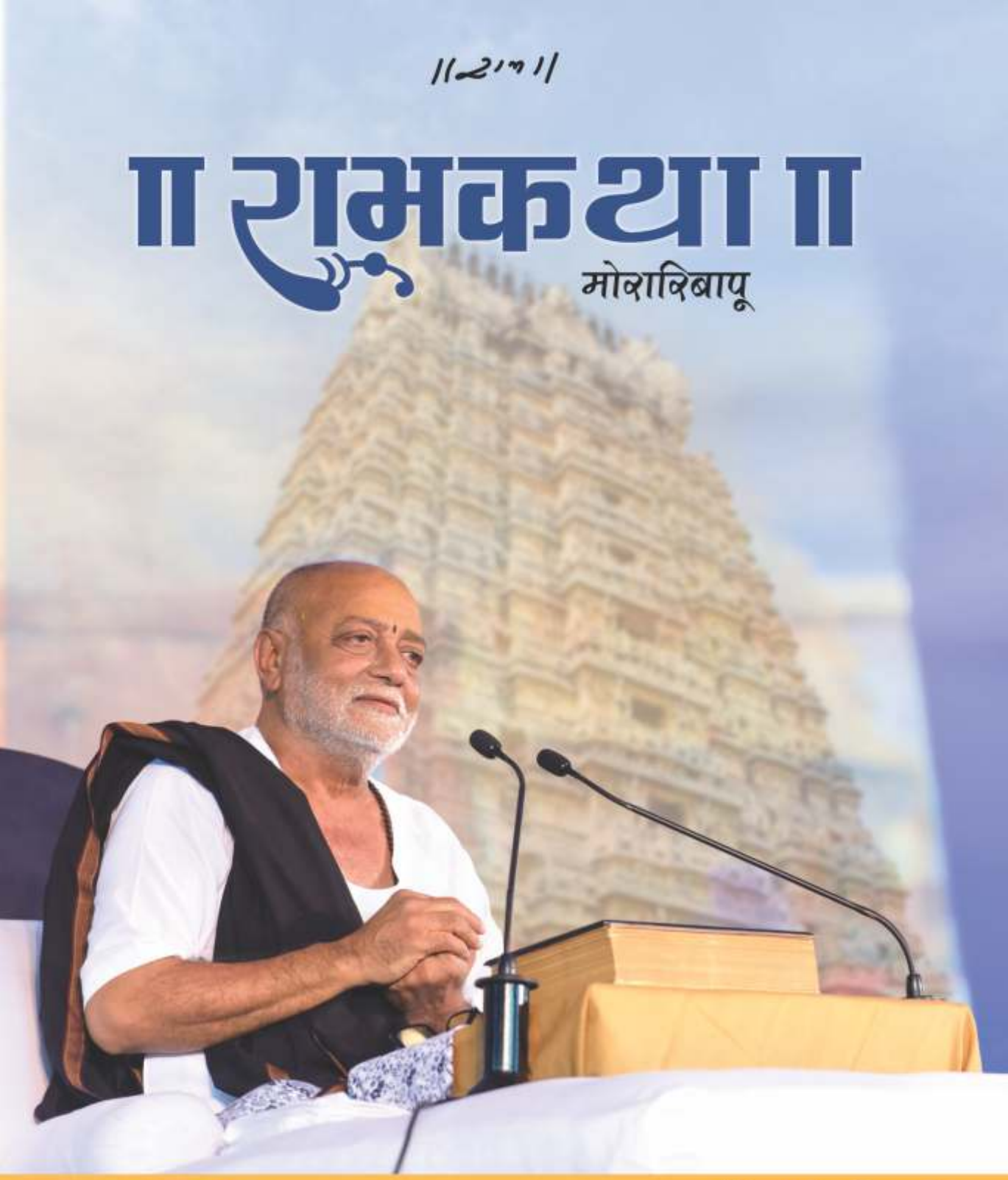

मानस-रुद्राष्टक

कांचीपुरम (तमिलनाडु)

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।।
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोऽहं ।।

|| **रामकथा** ||
मानस-रुद्राष्टक

मोरारिबापू
कांचीपुरम (तमिलनाडु)
दिनांक : १४-११-२०१५ से २२-११-२०१५
कथा-क्रमांक : ७८४

प्रकाशन :
जनवरी, २०१७

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

कांचीपुरम (तमिलनाडु) की पवित्र भूमि में जहां भगवान महादेव, भगवान विष्णु और पराम्बा माँ कामाक्षी बिराजित है वहां मोरारिबापू ने ता. १४-११-२०१५ से २२-११-२०१५ के दिनों में कथा का गान किया। एकाम्बरेश्वर महादेव के पावन परिसर में गायी गई इस कथा में बापू ने 'मानस-रुद्राष्टक' को केन्द्रीय विषय बनाया। सुविदित है कि इससे पूर्व उज्जैन और ॐकारेश्वर में 'रुद्राष्टक' को केन्द्रबिंदु बनाकर दो कथा हो चुकी है और इस शृंखला में यह तीसरी कथा सम्पन्न हुई। इस कथा अन्तर्गत बापू ने 'रुद्राष्टक' के माध्यम से गुरु का विशेष रूप में दर्शन व्यक्त किया।

'गुरु जीवंत 'रुद्राष्टक' है। गुरु जंगम 'रुद्राष्टक' है। गुरु सदा-सदा शाश्वत 'रुद्राष्टक' है।' जैसे सूत्रात्मक निवेदन के साथ बापू ने 'रुद्राष्टक' एवम् गुरु दोनों का महिमागान किया। अष्टमूर्ति के प्रतीक के रूप में 'रुद्राष्टक' को अर्थघटित करते हुए बापू ने गुरु में दिखाई देती अष्टमूर्ति का परिचय दिया। बापू ने दर्पण, दीपक, उपाय, दशा, दिशा, दृष्टि, द्वार और दिल जैसी गुरु की अष्टमूर्ति को रेखांकित की और उसका तात्त्विक विश्लेषण किया।

'रुद्राष्टक' में समाहित गुरु के बत्तीस लक्षण पर बापू ने प्रकाश डाला। साथ ही शंकर के निराकार से जो हनुमान के रूप में आकार धारण किया उसके पंद्रह रूप भी उद्घाटित किये। वानररूप, विप्ररूप, सूक्ष्मरूप-लघुरूप, विकटरूप, भीमरूप, दूतरूप, पुत्ररूप, सेवकरूप, सखारूप, देवरूप, मसकरूप, महावीररूप, मौनरूप, मंगलरूप जैसे हनुमाजी के स्वाभाविक लक्षणों का कथा दरमियान विशद विवरण हुआ। गुरु के वानररूप का बापू ने इन शब्दों में परिचय करवाया कि गुरु वानर होना चाहिए, गुरु में वानरवेडा नहीं होना चाहिए। गांधीजीवालें तीन बंदरो को याद करो। ये गुरु का लक्षण है। गुरु कौन है? बुरा न सुने किसी का भी। गुरु कौन है? बुरा न देखे किसी का भी। गुरु कौन है? बुरा न बोले किसी का भी।

'गुरुतत्त्व निराकार है लेकिन हमारा भाव उसको आकारित करता है।' जैसे सूत्रपात के साथ बापू ने 'रुद्राष्टक' के परिप्रेक्ष्य में अपना दर्शन प्रस्तुत किया। गुरु ईशान का ईश है; निर्वाणरूप है। गुरु विभु है, व्यापक है, ब्रह्मरूप है और वेदस्वरूप है। गुरु प्रचंड यानी भीषण है; प्रकृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ है; प्रगल्भ मतलब तेजस्वी है। गुरु निर्गुण है, निर्विकल्प है, निरीह याने इच्छारहित है। बुद्धपुरुष के-गुरु के ऐसे विभिन्न लक्षणों को बल्कि स्वभाव को बापू ने निजी दृष्टि से प्रस्तुत किये।

विविध धर्मों-संप्रदायों के सिद्धांतों में भी 'रुद्राष्टक' का अनुसंधान देखते हुए और सर्वव्यापक 'रुद्राष्टक' की महिमा गाते हुए बापू ने कहा, मुझे लगता है कि 'रुद्राष्टक' दशों दिशायें गा रही है। यहां संप्रदायभेद नहीं है। यहां जातिभेद नहीं है। यहां वर्णभेद नहीं है। यहां भाषाभेद नहीं है। यहां मतभेद नहीं है। यहां देशभेद नहीं है। यहां कालभेद नहीं है।

'मानस-रुद्राष्टक' की इस तीसरी कथा में यूं मोरारिबापू की व्यासपीठ से महादेव का विशेषरूप में दर्शन व्यक्त हुआ एवम् 'रुद्राष्टक' में निर्दिष्ट गुरु के गुण-लक्षण का विशिष्ट परिचय भी मिला।

– नीतिन वडगामा

'रामचरित मानस' विधिलेख मिटानेवाला सद्ग्रंथ है

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ||
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोऽहं ||

बाप, सब से पहले इस परम पावन तीर्थ में एक बार रामकथा का अनुष्ठान हो ये मनोरथ पूरा होने के लिए आज आरंभ हुआ है। ऐसे परम पावन अवसर पर भगवान महादेव बिराजमान है। हरिहर तीर्थ में भगवान वैकुंठपति बिराजमान है और मध्य में पराम्बा पराशक्ति माँ कामाक्षी बिराजित है। और-

शंकरं शंकराचार्यम् केशवं बादरायणं
सूत्रभाष्य कृतो वंदे भगवंतो पुनःपुनः।

जगद्गुरु आदि भगवान शंकराचार्य के चरणों में उसकी परम शाश्वत चेतना को प्रणाम करते हुए इस पावन पवित्र परंपरा में आये भगवान जगद्गुरु परमाचार्य; हमारा सौभाग्य है कि हमें दर्शन हुअे थे, कितने साल बीत गये खबर नहीं! लेकिन कर्णाटक में प्रवर्षण पर्वत पर जहां भगवान राम ने चौदह साल के वनवास के दौरान चातुर्मास किया था वहां कथा हो रही थी और भगवान परमाचार्य यतिवृंद के साथ यात्रा करते-करते पधारे थे। सहज बैठ गये थे सामने एक मंदिर में। सभी को दर्शन का बहुत पुन्यलाभ मिला था। कुछ समय आपने कथा भी श्रवण की थी और आप के बहुत-बहुत मौन आशीर्वाद हम सब को प्राप्त हुआ था। उस धन्य पल को मैं अहोभाव के साथ स्मरण कर रहा हूं। उसके बाद इसी पावन परंपरा में जगद्गुरु भगवान मुंबई के कार्यक्रम में व्यस्त है। शायद आ भी जाये लेकिन आप के अनुग्रह से आप की कृपा से कई बार आपके दर्शन हुए। वचनामृत सुनने का अवसर मिला और न्यू मुंबई में तो आपकी आज्ञा से आपके आदेश से आपकी कृपाछाया में एक कथा भी हुई। उसी परंपरा में आप बिराजमान है। 'युवास्यात् साधु युवाध्यापकः।' आप तो युवान ही है और युवान ही रहेंगे। मेरे देश का जगद्गुरु बुढ्ढा हो जाये ये हमें रास नहीं आयेगा। शरीर की बात और है यार! शरीर तो शरीर है। ये शाश्वत पद है। ये गंगा की पवित्र धारा की तरह परम प्रवाही परंपरा का निर्वहण कर रहे हैं। आप पधारे, बहुत कृपा की और आशीर्वाद प्राप्त हुआ है। और मैंने तो प्रार्थना भी की थी कि व्यस्तता हो, सायंकालीन कोई नित्यक्रम आपका हो तो आप विजय कर सकते हैं। लेकिन आप अपनी उदारतावश नहीं, आप कृपावश बैठे हैं।

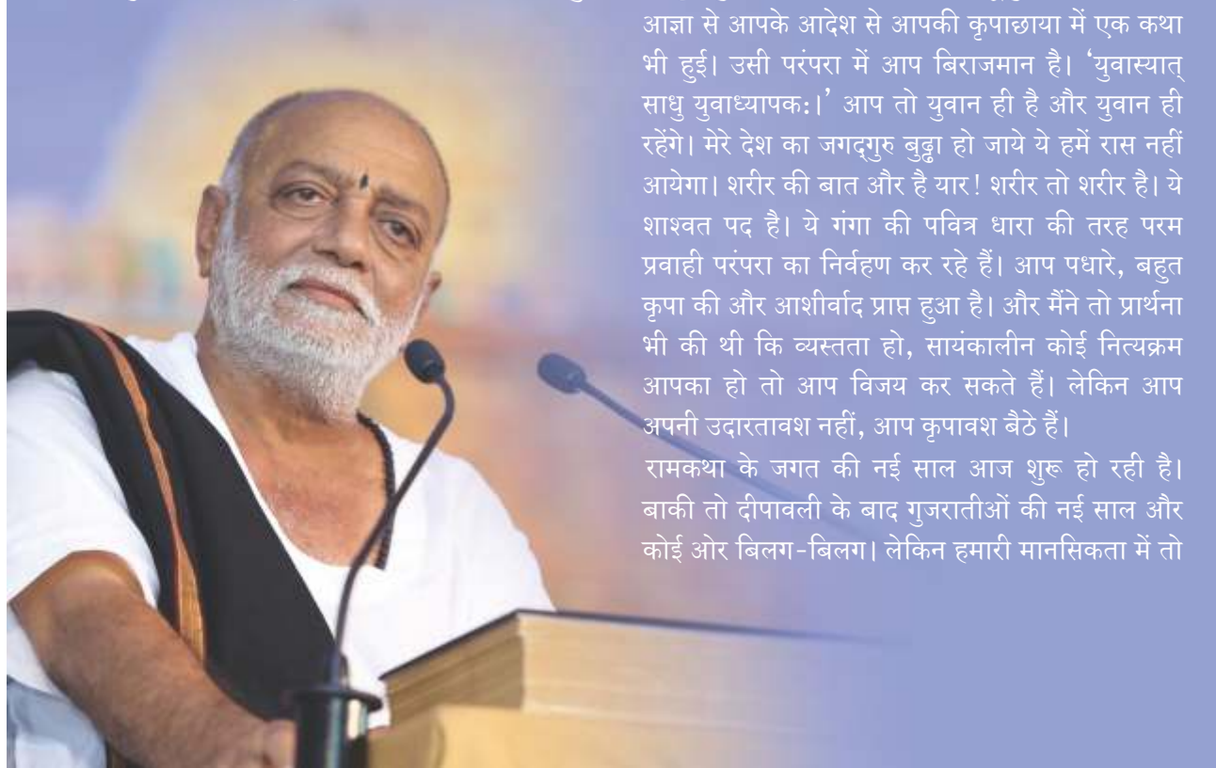

रामकथा के जगत की नई साल आज शुरू हो रही है। बाकी तो दीपावली के बाद गुजरातीओं की नई साल और कोई ओर बिलग-बिलग। लेकिन हमारी मानसिकता में तो

हमारा नया साल आज से शुरू हो रहा है, जब भगवत्कथा हो। तो नई साल की आप सर्व को बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो। और वो भी परमपावन तीर्थ में। भगवन्, हम नये साल की कथा शुरू करते है किसी तीर्थ में। इस बार यही तीर्थ में हमारा सौभाग्य कि हम सब आ सके, इसलिए हम सबको साथ लिये हुए इस पूरी परंपरा को और आपके चरणों मैं हम प्रणाम करते हैं। आपने व्यासपीठ का सन्मान किया, आशीर्वाद दिया। हमारे तुलसी ने 'रामचरित मानस' का आरंभ किया तो सबसे पहले वंदना की-

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना ।
मोह जनित संसय सब हरना ।।

सबसे पहले पृथ्वी के देवता, ये ब्राह्मण देवता क्या काम करते हैं? मोह से पैदा होनेवाले समस्त संशयों को निर्मूल करते हैं इसलिए सबसे प्रणम्य ये भूसुर-भूमिसुर है। आप के चरणों में मेरा प्रणाम और कथा में आये आप सभी मेरे श्रावक भाई-बहन, यजमान परिवार। और हनुमान जयंती में हनुमंत अवोर्ड के समय समर्थ शास्त्रीय गायक बालकृष्णदादाजी वहां पधारे थे लेकिन उस समय नादुरस्त थे; तो आपका हमको लाभ मिल गया कि आपने प्रारंभ में आकर बहुत भाव से उदारता के साथ गायन किया और आपका शास्त्रीय संगीत का लाभ मिला।

भगवन्, आप हिन्दी बहुत सुंदर बोलते हैं, आप इतना ही सुंदर समझते हैं ये हमारा सौभाग्य। बाकी तो आपने ठीक कहा कि यहां के मुताबिक संख्या ज्यादा है! यहां मुझे कौन सुने यार! ये भाषा का प्रोब्लेम है लेकिन आप थोड़ा सुन ले तो तामिलनाडु, पूरी पृथ्वी ने सुन लिया, पूरी कायनात ने सुन लिया। और ये बहुत बड़ी बात है कि ऐसे हमारे परम आचार्य, भगवान हमारे बीच में आते हैं। आना भी तो चाहिए और आते हैं। और भगवन्, आप मुस्कुराते हैं तो बहुत अच्छा लगता है। वर्ना आचार्यलोग मुस्कुराते नहीं! गुरुजी तो बहुत मुस्कुराते हैं। तो ये बहुत आपने अनुग्रह किया। वर्ना आप तो एकांतवासी है। और एकांत तो जिसको पचे उसे ही पचे! एक शे'र सुनाउं? कोई आपत्ति तो नहीं है ना? थेन्क यू, थेन्क यू। तमिल में थेन्क यू को क्या कहते हैं? नन्द्री-नन्द्री? मैं थोड़ा-थोड़ा सीख लूंगा हमारे आनंद के लिए।

सुना है कि वो फ़रिश्ता हो गया है।
हाय बेचारा कितना तन्हा हो गया है!

क्योंकि आदमी बहुत बड़ा हो जाता है तो वो तन्हा हो जाता है। कहीं जा नहीं पाता। किसीसे बात नहीं कर पाता। तो, आप पधारे हैं और आपकी उपस्थिति हमको आनंद और बल दे रही है। आपकी, आप संतों, आचार्यों की कृपा से, पंडितगणों की कृपा से सबसे पहले मेरे सद्गुरु भगवान की कृपा से और सद्गुरुरूपी रामकथा की कृपा से 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड' में आये 'रुद्राष्टक' के बारे में कथा गाना है। उस पर तीन बार कथा हुई है। उज्जैन, ॐकारेश्वर; दो ही हुई है? मैं तो तीन मानता हूं! अच्छा, मुझे तो पांच करनी है। तो ये तीसरी है? एक कहीं और फिर गाऊंगा। देखूंगा, हो तो हो!

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।

तो बाप, कोई भी पंक्तियां उठाये। प्रथम जहां से 'रुद्राष्टकम्' का आरंभ होता है इसी दो पंक्तियों का भूमिका के रूप में इस रामकथा में हम आश्रय करेंगे। मेरे मन में तो था कि शायद चौथी कथा है। मगर ये तीसरी कथा है। वर्ना मन ने तो कुछ और सोचा था कि ये यदि चौथी हो तो उज्जैन में फिर 'न जानामि योगं जपं नैव पूजां।' करके 'रुद्राष्टक' को पूरा कर देंगे। खैर, मालिक की इच्छा! तो फिर भगवान शिव की नगरी में, माँ की नगरी में, भगवान विष्णु की ये परमपावन नगरी में एकबार भगवान महादेव का विशेष रूप में दर्शन करने का हमें अवसर प्राप्त हुआ है उसकी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। मैंने शायद गत कथा में घोषणा कर दी थी कि कांचीपुरम् में 'रुद्राष्टक' पर बोलना हो तब मेरी

व्यासपीठ 'रुद्राष्टक' में गुरु के लक्षणों की जो चर्चा है, उस पर केन्द्रित होगी।

भगवान शिव त्रिभुवन-गुरु है, हम जानते हैं, 'तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।' एक दृष्टि से 'रुद्राष्टक' का पाठ करे, पारायण करे, दर्शन करे, गुरुकृपा से कुछ विशेष आनंद ले तो बुद्धपुरुष के लक्षण क्या है, कैसे पहचाने इस कलिकाल में हम सद्गुरु को इनके सभी लक्षण भी एक अर्थ में हम पा सकते हैं और हमारे जीवन को कृतकृत्य महसूस कर सकते हैं। तो इसी रूप में एकबार 'रुद्राष्टक' की चर्चा भगवत् कृपा से करेंगे।

विशेष कुछ आज न कहते हुए में इतना ही कहूं कि शिष्य को गुरु के पीछे चलना चाहिए? दायीं ओर चलना चाहिए? बायीं ओर चलना चाहिए कि चेला आगे हो जाए और गुरु पीछे चले? अथवा तो गुरु पैदल चले और शिष्य हेलिकोप्टर में उसके उपर उड़े? जगह कौन-सी होनी चाहिए आश्रित के अनुगमन की? इक्कीसवीं सदी में यह तय किया जाय। लोग तो कहते हैं, हम उनके फोलोअर्स है, उनके अनुयायी है। बड़ा प्यारा शब्द है। होना चाहिए। 'मानस'कार ने कह दिया है, 'गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।' बिना गुरु भवसागर तैर ही नहीं सकता। लेकिन गति क्या होनी चाहिए? जैसे लोग कहतें है कि कुछ लोग है कि फ़लां के पीछे पागल की तरह दौड़ते हैं! इधर दौड़ते हैं! ऐसी-ऐसी बातें आलोचनात्मक रूप में भी तथाकथित बौद्धिक जगत करता है! 'रामचरित मानस' के आधार पर शिष्य का गमन, शिष्य का गुरु के पीछे चलना ठीक है। आगे-पीछे, दायीं ओर, बायीं ओर कि कोई कोण में चले दिशाओं को छोड़कर। गुरु इधर जा रहा है वो अग्निकोण में जा रहा है। ये उधर जा रहा है, वो नैऋत्य कोण में जा रहा है! दिशा निश्चित हो जाये।

अभी दो दिन पहले हनुमान जयंती गई है। काली चौदश, अश्विन कृष्ण चतुर्दशी। अपने गुजराती केलेन्डर के मुताबिक और वो शास्त्र के एक मत अनुसार हनुमानजी की जन्मजयंती मानी जाती है। गुजराती आदि कई प्रांतों में चैत्र शुक्ल पूनम हनुमान जयंती मानी जाती है। और शास्त्रों में कई बातें ऐसी होती है; भगवान ने सुंदर प्रकाश डाला। पहली बार सुना कि दशरथजी यहां आये थे कामाक्षी माँ के पास फिर माँ ने कृपा की और कामाक्षीमाँ की कृपा से चार पुत्रों की प्राप्ति हुई! ये पहली बार मैने सुना, बोलो! क्योंकि चेतना तो हर जगह विस्तरित है, व्यापक है। इसलिए कथा ये भी 'हरि अनंत हरि कथा अनंता।' तो, इस न्याय से तो ये पक्ष भी अच्छा लगता है।

तो, हनुमानजयंती के बारे में भी कई राय है। मैं आपसे प्रार्थना करूं मेरे भाई-बहन कि भगवान शंकर त्रिभुवन गुरु है, परमगुरु है। शिव से उपर कोई नहीं है। 'नास्ति तत्त्व गुरु परम्।' मैं एक बात बीच में ओर करूं कि मूल जिसने छोड़ दिया है वो ज्यादा टिकेगा नहीं। शाखायें कितनी भी हरी-भरी हो, पल्लवित हो, पुष्प लगते हो, फोरम हो लेकिन मूल से जिसने नाता तोड़ा वो कभी न कभी गिर जाता है। वैदिक धर्म, वैदिक परंपरा, सनातन धर्म, हमारे वेद, हमारे उपनिषद और भगवान महादेव ये मूल है। आज-कल राष्ट्र में कई प्रकार की वो चलती है कि हम स्वतंत्र है! हम किसीके उसमें नहीं आते हैं! सब अपने-अपने निवेदन कर रहे हैं! लेकिन मूल से कटोगे तो कब तक जीओगे? शिवतत्त्व मूल है, आदि है, अलौकिक है। और ये शिवतत्त्व के ही रुद्रावतार जिसको मानते हैं वो हनुमानजी है। तुलसीजी ने तो 'विनयपत्रिका' में लिख दिया कि 'वानराकार विग्रह पुरारी।' वानराकार में भगवान शिव ने मानो विग्रह धारण किया। तो श्री हनुमानजी से हम और आप सीखें, क्योंकि हमारा तो आशय वो है कि गुरु के साथ कैसे रहे?

गुरु संस्कार देता है, ध्यान देना। मैंने आज ही एक सूत्र सुना, मुझे बहुत प्यारा लगा कि माँ-बाप आकार देता है, गुरु संस्कार देता है। हम कहते हैं माँ-बाप संस्कार देते हैं। अरे, खाक् माँ-बाप संस्कार देते हैं! उसमें हो तो दे ना? माँ-बाप क्या संस्कार देते हैं? माँ-

बाप ने शुरूआत की होती तो व्यासपीठों का का काम बहुत सरल हो जाता। लेकिन माँ-बापों ने तो कहां?

एक टीचर ने विद्यार्थीओं को क्लास में कहा, सुनो; जैसे स्कूल में हाजरी लेते हैं ना, प्रेझन्ट; नाम बोलते हैं, तो 'यस सर', कहते हैं। श्रीकांत उपाध्याय? यस सर। बकुल पंडया? यस सर। संगीतादेवी? हाजिर। शिक्षक ने कहा, बच्चों, मैं आपका नाम नहीं बोलूंगा और हाजिर है या तो 'यस सर' कह देना, लेकिन आपका नाम मैं नहीं बोलूंगा। बच्चों ने कहा, ठीक साहब, आप साहब है, जो करो वो! अहंकार? यस सर। द्वेष? हाजिर है। निंदागौरी? यस सर। कुथलीदेवी? यस। बेईमानी? यस सर। दंभ? हाजर। झूठ? हाजिर। चोरी? हाजिर। सब हाजरी पुराने लगे क्योंकि सब हाजिर है! शिक्षक ने आखिर में पूछा, सत्य? कोई जवाब न आया! प्रेम? कोई जवाब न आया! करुणा? जवाब न आया! शिक्षक को आश्चर्य हुआ कि सत्य, प्रेम, करुणा आज कलास में नहीं है ? देखा तो दरवाज़े पे खड़े हैं! टीचर ने जाकर पूछा कि तुम तीनों बाहर क्यों हो? तो तीनों ने कहा कि वर्ग इतना फूल है कि हमें अंदर प्रवेश करने की जगह नहीं मिली!

हमारे जीवन की पाठशाला में अहंकार, निंदा, ईष्या, द्वेष, बदला लेने की वृत्ति, बेईमानी, चोरी भरे हैं! तो, केवल तीन छात्र गैरमौजूद माने जाते हैं। तत्त्वत: वो गेरमौजूद नहीं हैं, मगर जगह नहीं है! कैसे बैठे? सब भरा हुआ क्लास है! तो, मूल बात कहां थी? माता-पिता आकार देते हैं, संस्कार बुद्धपुरुष देते हैं। संस्कार माँ-बाप देते होंगे, नहीं देते ये कहना तो ठीक नहीं लेकिन ठीक है, संस्कार गुरु देते हैं। शास्त्रों ने जिसको संस्कार कहा है वो संस्कार की बात है।

अद्‌भुत शब्दब्रह्म है हमारे वाङ्मय का। संस्कार तो गुरुजन देते हैं, आचार्यजन देते हैं। संस्कार, विद्या सही अर्थ में प्राप्त करने में विचार की दृष्टि से, मतलब शारीरिक दृष्टि से नहीं, गुरु के सन्मुख रहना। और गुरु यदि गति करे तो उनकी गति के पीछे मत चलना, क्योंकि उनकी गति नहीं पकड़ी जाएगी। तो उनके सन्मुख रहकर पीछे कदम चलो ताकि गुरु भी अपनी गति में रहेगा, क्योंकि उनको लगेगा कि मैं ज्यादा गति करूंगा तो वो बेचारा पीछे पैर चलेगा और कहीं चोट लग जायेगी! कहीं गिर न जाये! इक्कीसवीं सदी में गुरु के पीछे अनुगमन अच्छी बात है लेकिन हनुमानजी के चरित्र को

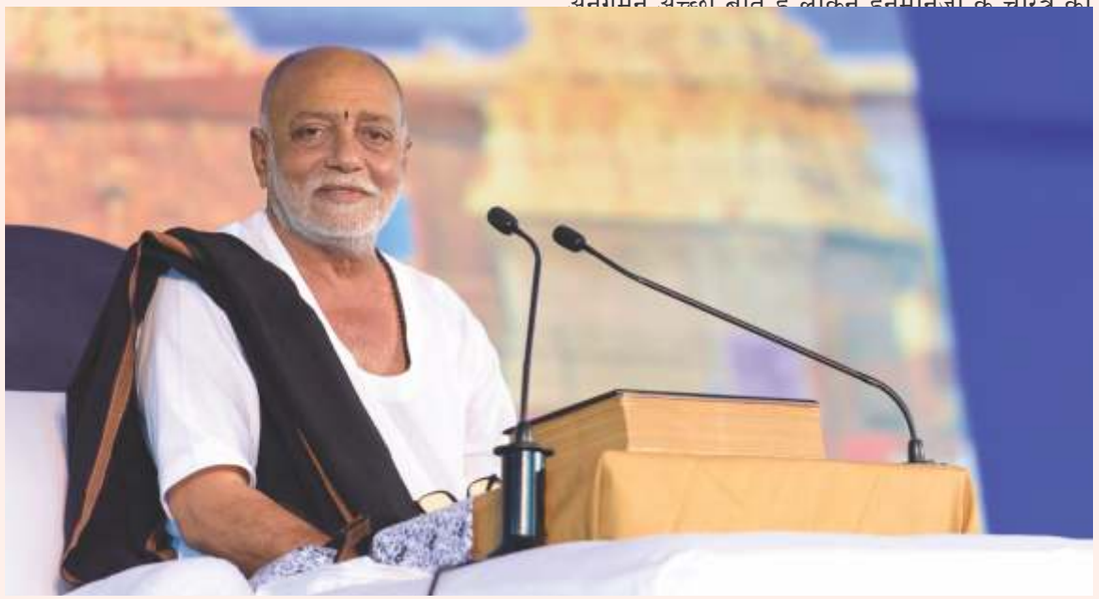

देख लें तो लगता है कि हनुमानजी ने उसको दूर भी रखा। मेरे मन में ये बात आती रहती है, मैं कहता रहता हूं कि सूर्य हमको प्रकाश देता है। सूर्य हमको जीवन देता है। सूर्य के कारण जल प्राप्त होता है। सूर्य वनस्पति को बढ़ावा देता है। प्रकाश का उसमें हिस्सा है। सबकुछ हमारा सूर्य के कारण है लेकिन हमको पास नहीं रहने देता, दूर रखता है। कई लोग आज आलोचना करते हैं कि बुद्धपुरुष किसी को अपने पास क्यों नहीं रहने देता? किसी न किसी बहाने क्यों दूर कर देते हैं? यही एक काम है, वो जीवन देगा, प्रकाश देगा, जिंदगी देगा, आनंद से भर देगा। क्या नहीं देगा? लेकिन कायम साथ नहीं रखेगा, एक डिस्टन्स जिसको मेरी व्यासपीठ प्रामाणिक डिस्टन्स कहती है।

तो, गुरु के लक्षणों का दर्शन हमारे आंतरिक विकास के लिए, विश्राम के लिए हम विशेष रूप से 'रुद्राष्टक' के माध्यम से करेंगे ताकि कहीं भेद न रहे, कहीं विघटन न हो, कहीं ऊंच-नीच के कारण जो न जाने कितने-कितने वो हो रहे हैं इससे समाज और जगत बाहर निकले। ऐसे भगवान त्रिपुरारि की नगरी में मुरारि कथा कहने आया है। तो फिर से एक बार 'मानस-रुद्राष्टक' को हम इस नवदिवसीय कथा का केन्द्रीय विचार बना लेते हैं। और क्रमश: साथ में मिलकर बुद्धपुरुषों की कृपा से, सद्‌गुरु के आशीर्वाद से, संतों के अनुग्रह से, शास्त्र की कृपा से, अंत:करण की प्रवृत्ति के कारण जो भी होगा ये संवाद नव दिन चलेगा। आपका नव दिन का निवास शांतिपूर्ण रहे, विश्रामपूर्ण रहे, उहापोहमुक्त हो, सत्य, प्रेम और करुणा की क्लास में हाजरी रहे ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करूं। और ये नौ दिन भगवान शिव का वाङ्मय अभिषेक करेंगे।

कथा की थोड़ी जो एक परंपरा-सी है ये बात कर दूं। पहले दिन वक्ता को चाहिए कि ग्रंथ का परिचय दिया जाय, उसकी महिमागान किया जाय। और आप को 'रामचरित मानस' की महिमा क्या बताना, क्या दिखाना? विश्ववंद्य गांधीबापू कहते थे कि जिनको 'रामायण' और 'महाभारत' का ख्याल नहीं है उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं है! स्वाभाविक है, हम जानते हैं, फिर भी एक पावन परंपरा का निर्वहण करें। जिस सद्‌ग्रंथ की हम नौ दिन बात करेंगे, ये 'रामचरित मानस' है। सात सोपान में उसका वर्गीकरण किया है। आदि कवि वाल्मीकिजी ने 'कांड' कहा है। तुलसी ने 'सोपान' शब्द का प्रयोग किया है फिर भी हम सरलता के कारण हम 'कांड' शब्द लगा देते हैं। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किन्धाकांड', 'सुन्दरकांड', 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड।' सात सोपान की यह सीढ़ी है परम को पाने की। तो ये सात सोपान का ये सद्‌ग्रंथ, विधिलेख को मिटानेवाला ये सद्‌ग्रंथ। मैं जो बोल रहा हूं, बहुत जिम्मेदारी के साथ बोल रहा हूं। 'रामचरित मानस' ऐसा सद्‌ग्रंथ है कि विधिलेख मिटा देता है साहब! सवाल महत्त्व का ये है कि हमारी पूर्ण आस्था है?

सात सोपान में ये सद्‌ग्रंथ रचित है। प्रथम सोपान 'बालकांड' में मंगलाचरण गोस्वामीजी ने संस्कृत में किया। वहां सात मंत्र लिख दिये। तुलसी के जीवन में सात का अंक प्रधान रहा। नौ का अंक तो रामजन्म का अंक है ही। हनुमानजी के प्रति भी उनकी पूर्णत: अनन्यता। और ये ग्यारहवें रुद्र है इसलिए ग्यारह अंक की भी उसके जीवन में बड़ी प्रतिष्ठा है। सात, नौ और ग्यारह, ये तीनों तुलसी के बहुत प्यारे अंक है, ये मेरी तलगाजरडी आंखों से मुझे ज्यादा दिखते हैं। तुलसी पूर्णांक में परिभ्रमण करते हैं। तो, आरंभ में तुलसी ने सात मंत्र लिखे हैं। एक-दो मंत्र का उच्चारण कर लें-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

हमारे देश की बहुत प्यारी परंपरा है। मंगल उच्चारण तो बाद में, पहले मंगल आचरण। तू बोल न बोल, तेरा आचरण मंगल होना चाहिए। तुझे श्लोक आये न आये। उच्चारण तो हुआ है लेकिन नाम दिया है ऋषिओं ने मंगल आचरण। मेरे भाई-बहन, न बोलने वाला भी भीतर से मंगलाचरण करता है। आचरण की महिमा है।

पहला मंगलाचरण का मंत्र 'वंदेवाणीविनायकौ।' हे माँ सरस्वती और भगवान विनायक, आपको मैं वंदन कर रहा हूं। फिर तुलसी ने माँ पार्वती और भगवान शिव की स्तुति की। त्रिभुवन गुरु के रूप में भगवान शिव को प्रणाम किया। आदि कवि वाल्मीकि और श्री हनुमानजी महाराज को विज्ञान विशारद कहके उनकी वंदना की। 'सीताराम गुनग्राम' कहके सीता-रामजी की वंदना की। 'उद्भवस्थिति संहारकारिणी' कहके पराम्बा जानकी की वंदना की। रामजी की वंदना की। ऐसे मंगलाचरण करते-करते तुलसी ने अपने ग्रंथ का हेतु बताया। 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।' मेरे अंतःकरण के सुख के लिए मैं रघुनाथ गाथा कहने जा रहा हूं। सात मंत्रों में मंगलाचरण हुआ। तुलसी को लगा कि आखिरी व्यक्ति तक जो उपेक्षित है, जो वंचित है, जिसके पास न सूत्र पहुंचता है, न मंत्र पहुंचता है; न शास्त्र पहुंचता है, न कोई श्रीमंत जाता है, उसको यदि राम समझाना है, उसमें बैठे राम को जगाना है तो मुझे श्लोक को दंडवत् करते हुए श्लोक का आशीर्वाद लेके लोकबोली में ग्रंथ की रचना करनी होगी इसलिए तुलसी ने सात मंत्रों में मंगलाचरण के बाद लोकबोली में लिख दिया और पांच सोरठें लिख दिये।

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ।।

पांच सोरठें लिखे बिलकुल लोकबोली में। जगद्गुरु शंकराचार्य ने हम वेदावलंबियों को, सनातन धर्मावलंबियों को एक सीख दी कि सनातनीओं को चाहिए कि आरंभ में पंचदेव की पूजा करे। और गोस्वामीजी ने वो बात 'मानस' में स्थापित करके शैव और वैष्णवों में सेतु बना दिया। एक समन्वय कर दिया। शास्त्र शुरू होता है और वो पांच देव की स्थापना करते हैं। हमको भगवान शंकर का मत याद दिलाने के लिए कि गणेश की पूजा करो, पार्वती की, शिव की, सूर्य की, दूर्गा की पूजा करो। गणेश की पूजा करनी ही चाहिए लेकिन निरंतर तो हम नहीं कर पायेंगे। तो गणेश का अर्थ है विवेक। चौबीस घंटों हमें विवेक में जीना चाहिए। ये गणेश की पूजा है। और आदमी आठ घंटे गणेश की पूजा करे और विवेक में न जीये तो? युवान भाई-बहनों को चाहिए विवेक। और विवेक सत्संग के बिना नहीं आ सकता।

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।

गणेशपूजा माने विवेक रखना। फिर सूर्य की पूजा माने सूर्य का अर्घ्य, सूर्यनमस्कार, गायत्रीमंत्र ये सब भारतीयों को करना चाहिए। करते हैं सब। करे वो प्रणम्य हैं लेकिन अगर आप न भी कर पाये तो प्रकाश में जीने का संकल्प सूर्यपूजा है। 'तमसो मा ज्योर्तिगमय।' जितने समय हम प्रकाश में जीये वो एक अर्थ में सूर्यपूजा है। विष्णु की पूजा; भगवान वैकुंठाधिपति विष्णु की पूजा पुरुषसुक्त से करनी चाहिए, षोड़ोपचार करनी चाहिए, लेकिन ये व्यस्त जगत न कर पाये तो विष्णु की पूजा का ये अर्थ कर सकते हैं कि हृदय को व्यापक रखे; हमारी भावना, हमारी विचारसरणी विशाल हो, विष्णु की तरह व्यापक हो। विशाल दृष्टिकोण ये विष्णु की पूजा है। गुणातीत श्रद्धा, त्रिगुण से मुक्त श्रद्धा ये पार्वती है। शक्ति की पूजा करनी चाहिए यानी श्रद्धा को बरकरार रखनी चाहिए। और शंकर विश्वास के प्रतीक है। शिव का अर्थ ही कल्याण होता है। दूसरों का कल्याण करना, दूसरे का शुभ चाहना वो भगवान महादेव का अभिषेक है। वो अभिषेक तो करना ही चाहिए लेकिन सब का शुभ हो, कल्याण हो। इस अर्थ में भी हम पंचदेव को आत्मसात् कर सकते हैं। तुलसी ने पांच सोरठें में पंचदेवों का स्मरण किया और आखिरी सोरठे में गुरुवंदना की-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।

गुरुवंदना का आरंभ हो रहा है। मेरी व्यासपीठ ने कई बार बातें की है कि एक गुरु का दृढ आश्रय हो जाये तो गणेश की भी पूजा हो जाती है, गौरी की पूजा भी हो जाती है; महादेव की, विष्णु की और सूर्य की भी पूजा हो जाती है। गुरु में सब कुछ आ जाता है। और तुलसी की चौपाईयों में पहला प्रकरण 'गुरुवंदना' आता है। दो-तीन पंक्तियां गुरुवंदना की हम गा लें-

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।

गुरुवंदना की। गुरु की चर्चा तो हमें नव दिन करनी है इसलिए केवल इतना स्मरण करते हैं। गुरु की चरणरज से तुलसी कहते हैं, मेरी आंख पवित्र करके मैं रामकथा कहने जा रहा हूं। पहले ईष्ट की पवित्रता आवश्यक मानी और जैसे आंख गुरुकृपा से पवित्र हुई तो पूरी दुनिया तुलसी को प्रणाम करने योग्य लगी।

सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

पूरा ब्रह्मांड अब ब्रह्ममय हो गया। और पूरे जगत को तुलसी ने प्रणाम किया और इसी प्रणाम की शृंखला में माँ कौशल्या की वंदना करते हैं। चारों भाईयों की वंदना करते हैं। बीच में हनुमानजी की वंदना करते हैं। पहले दिन की कथा हम सदैव हनुमानजी की वंदना तक लिये चलते हैं।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना ।
राम जासु जस आप बखाना ।।

हनुमानजी की वंदना में मैं अकसर कहा करता हूं कि कोई भी देवताओं को आप पूजे, मुबारक। लेकिन हनुमंत आश्रय करने से अनुष्ठान में प्राणबल बढ़ता है। वो पवनपुत्र है। 'रामचरित मानस' के पांच प्राणों की रक्षा हनुमानजी ने की है। हनुमंततत्त्व बिन सांप्रदायिक तत्त्व है। कोई ये नहीं कह सकता कि ये केवल एक विशेष धर्म का है। हनुमानजी का आश्रय करो। हमारे देश में ये बात चली कि बहनें हनुमानजी की पूजा न कर सके! ठीक है, नियम हो तो निभाने चाहिए लेकिन हनुमानजी को कुछ ऐसी चिंता नहीं है। 'रामचरित मानस' में लिखा है कि हनुमानजी की पूजा राक्षसियों ने की है। तो मैं कहता रहता हूं कि हनुमानजी की पूजा का अधिकार यदि राक्षसियों को भी है तो हमारे देश की बहन-बेटियों को क्यों नहीं? पता नहीं, किसने डाल दिया? हां, कोई शास्त्रीय विधान हो तो मानने चाहिए। बहन लोग 'हनुमानचालीसा' का पाठ न कर सके, 'सुन्दरकांड' का पाठ न कर सके, हनुमानजी का दर्शन न कर सके, ये किसने बेडियां पहना दी? कौन है वो? मैं खोज रहा हूं इस आदमी को! श्री हनुमानजी महाराज तो प्राणवायु है, प्राणतत्त्व है। आप इसे न छू सके लेकिन वो तो तुम्हें चौबीस घंटें छूता है। जाओगे कहां? तो हनुमानजी का आश्रय तो करना चाहिए। हनुमंतत्त्व बहुत प्रेरणा देता है। 'विनयपत्रिका' की एक-दो पंक्ति के साथ आज की कथा को विराम दिया जाएगा।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

तो, ये वंदना प्रकरण 'मानस' का है। उसमें हनुमानजीकी वंदना। उसके बाद सखाओं की वंदना की। उसके बाद सीता-राम की वंदना करते हैं। उसके बाद परमात्मा के मंगलमय नाम की वंदना करते हैं।

विश्ववंद्य गांधीबापू कहते थे कि जिनको 'रामायण' और 'महाभारत' का ख्याल नहीं है उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं है! जिस सद्ग्रंथ की हम नौ दिन बात करेंगे ये 'रामचरित मानस' है। सात सोपान में उसका वर्गीकरण किया है। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किन्धाकांड', 'सुन्दरकांड', 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड।' सात सोपान की यह सीढ़ी है परम को पाने की। बहुत जिम्मेदारी के साथ बोल रहा हूं। 'रामचरित मानस' ऐसा सद्ग्रंथ है कि विधिलेख मिटा देता है साहब! सवाल महत्त्व का ये है कि हमारी पूर्ण आस्था है?

गुरु जीवंत 'रुद्राष्टक' है

कथा का केन्द्रबिन्दु है 'रुद्राष्टक' और 'रुद्राष्टक' के माध्यम से गुरु का विशेष रूप में हम दर्शन करें। पहली बात तो ये अष्टक है रुद्र के सन्मुख रुद्र की रुद्रता को कम करने के लिए। और कुछ समय पहले कठोरता आ गई थी रुद्र में, उस कठोरता को कृपालुता में परिवर्तित करने के लिए एक साधु द्वारा गाया गया ये अष्टक है। उसमें आठ बंध है और गोस्वामीजी ने अष्टक इसीलिए रचा कि भगवान महादेव, शिव अष्टमूर्ति है। अष्टमूर्ति को लक्ष में रखकर ये अष्टक गाया गया। ये 'रुद्राष्टक' में जो छंद है भुजंगप्रयात। भुजंग माने सर्प, साप। और उस परम साधु जो महाकालेश्वर के मंदिर में बैठा है, जिसका आश्रित कागभुशुंडि कुछ द्रोह कर देता है। एक वस्तु याद रखना प्यारे, ये डराने की बात नहीं, सावधान होने की बात है। रुद्रद्रोह अच्छा है, विष्णुद्रोह अच्छा है, गुरुद्रोह बहुत भयंकर है। यद्यपि उससे मुक्त भी वो ही करता है।

तो, भुजंगप्रयात छंद में उसकी रचना है। उसमें कितनी मात्रा चाहिए ये व्याकरण में हम न जाये। ये पूरा छंद शास्त्र है। लेकिन यह भुजंगप्रयात छंद क्यों पसंद किया? गुरु के मन में हाहाकार हो चुका है। और इससे उठा ये दर्द, ये पीड़ा, ये पुकार, भुजंगप्रयात में प्रवाहित होता है। महादेव ने, महाकाल ने, भगवान शंकर ने कागभुशुंडि को अजगर हो जाओगे, ऐसा श्राप दिया है। और सर्पयोनि से मुक्त करने के लिए इस साधुपुरुष ने भुजंगप्रयात का प्रयोग किया। अब दवाओं की शोध हो चुकी है इसलिए इतने महान मंत्रों का प्रयोग इतनी छोटी-सी चीज में प्लीज़ मत करियो। वर्ना आस्था जगत कहता है कि किसीको सर्पदंश हो जाये और भुजंगप्रयात छंद का पाठ किया जाय, सर्पदंश उतर जाता है। तो सर्पयोनि से मुक्त करने के लिए भुजंगप्रयात छंद का उपयोग किया। अथवा तो मेरी व्यासपीठ को ये भी लगता है, शंकर को भुजंग प्रिय है। ये सर्प के आभूषण धारण करते हैं। और जो बहुत प्रिय होता है उसे सब गले लगाते हैं। शंकर को बहुत प्रिय पार्वती भी नहीं, जितना गरल और भुजंग है। गरल को भी कंठ में और भुजंग को भी कंठ में धारण किया है। अथवा तो ये साधु का शिष्य भुशुंडि भुजंग तो बनेगा लेकिन मेरे गले में रहा भुजंग जो मेरे शरीर के स्पर्श से उसका विष भी इतना भयानक नहीं रहेगा। जैसे वक्र चंद्र को वो भाल में रख सकते हैं तो भुशुंडि को वो कंठ में रख सकते हैं।

शास्त्रवचन कहता है कि शिष्य पाप करता है वो गुरु को भोगना पड़ता है। एक वस्तु याद रखना कि हम जो कर्म करते हैं वो ही हमें भोगना पड़ता है। ये सर्व जीव का सिद्धांत है, बुद्धपुरुषों का नहीं। बुद्धपुरुषों को अपने आश्रित के पातक भी भोगने पड़ते हैं। राजा को राज्य के पाप को भुगतना पड़ता है। कर्म का सिद्धांत टूट जाता है। एक फेक्टरी का मेनेजर है, कर्मचारी काम करे, न करे; चूक करे, उत्पादन ठीक हो, न हो; हानि-लाभ का जो फल है, वो मालिक को भोगना पड़ेगा। राज्य की प्रजा पाप करे तो राजा को भोगना पड़ता है। और राजा पाप करे तो उसके धर्मगुरु (पुरोहित) को भोगना पड़ता है। माताएं, बेटी, बहन कुछ समझ लें, पत्नी अगर भूल करे तो पति को भुगतना पड़ता है; शास्त्र कहता है। और वहां श्लोक में जगह नहीं थी इसलिए नहीं लिखा होगा। मुझे कहने दो, पति अगर पाप करे तो पत्नी को भी भुगतना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी में थोड़ा संशोधन है मुरारिबापू का। संतुलन होना चाहिए। शिष्य के पाप को गुरु को भुगतना पड़ता है। चाणक्यनीति मैं ऐसा मिलता है।

तो, मूल बात, अष्टक लिखा गया। शिव अष्टमूर्ति है। शिव त्रिभुवन गुरु है। कुछ विशेष रूपमें, भूमिका में इस अष्टमूर्ति का दर्शन करें। गुरु हमारे लिए अष्टमूर्ति है। पूरा अष्टक है। गुरु जीवंत 'रुद्राष्टक' है। गुरु जंगम 'रुद्राष्टक' है। गुरु सदा-सदा शाश्वत 'रुद्राष्टक' है मेरी समझ में। गुरु हमारा दर्पण है, आयना है। गुरु दर्पण मूर्ति है। पद में तो भ्रांति है। पैसों मैं तो हमारा अहंकारी रूप नज़र आने लगता है। मूढ़ता और विकृति दिखती है। प्रपंच में हम अपना रूप नहीं देख सकते। भगवान शंकर के इस 'रुद्राष्टक' में शब्द प्रयोग किया है 'निजं।' निजं माने गुरु हमें स्वरूप का बोध करा दे। हम जो है वो गुरु में देख पाते हैं। वो है हमारा दर्पण। दर्पण के पीछे बैठने से कुछ नहीं दिखता। दर्पण को पीछे छोड़ने से कुछ छबि नहीं मिलती। ये भ्रान्ति की सृष्टि निर्मित होती है, निजता नहीं होती।

धर्म के दस लक्षण है। सावधानी से सुनियेगा। दस में से एक भी लक्षण हमारे में न हो तो चलेगा। कलियुग है। ये व्यासपीठ से बोल रहा हूं यार! कोई ये कहेगा कि दस लक्षण में एक भी नहीं होगा तो चलेगा, और तुम्हारे इतने श्रोता है वो धर्म को छोड़ देगा! नहीं, सावधान! आचार्यगण ये मेरी बातें जरूर समझ सकेंगे, शायद पंडित न समझ सके! दुनियाभर के मेरे श्रोताओं को कहना चाहूंगा। मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण गिनाये है। कौन-कौन दस वो आप पढ़ लीजिएगा, अभी तो मेरी स्मृति भी नहीं। लेकिन धर्म के लक्षण में से एक भी न हो तो कोई चिंता नहीं। 'सखा सोच तजहु बल मोरे।' चौपाई बोल रहा हूं, वादा नहीं कर रहा हूं। एक बात सुनना, गुरु कभी वादा नहीं करता, गुरु ज्यादा करता है। गुरु जब करता है तो ज्यादा करता है। अनहद, असीम, लिमिटलेस उसकी कृपा होती है। सद्गुरुओं की बात है। जगद्गुरु शंकराचार्य, नानकदेव, कबीर, महावीर, बुद्ध, नरसिंह महेता, दीवानी मीरां, गंगासती, गोस्वामी तुलसी इन सबकी चर्चा है। हम तो इनमें से कुछ पा लें तो कृतकृत्य हो जाये। तो याद रखना, वो वादा नहीं करता, ज्यादा करता है। और अपने अंदर सोचे तो पता चलता है कि गुरु ने बहुत ज्यादा किया है।

हुं तो खोबो मागुं ने दई दे दरियो,
सांवरियो रे मारो सांवरियो..

आदमी ईमानदारी से सोचे कि हम जिस गुरु के आश्रित है इन्होंने हमें क्या नहीं दिया? हम थोड़े बेईमान होते जा रहे हैं! क्या नहीं दिया? शबरी के प्रसंग में आया है। राम यह कहते हैं, 'नव मह जिनको एक होई।', मुरारिबापू कहते हैं कि नव में से एक भी भक्ति न हो तो चिंता नहीं, छोड़ो! इसका मतलब बिना सोचे, नकारने की बात नहीं है। जागृति के बाद सब छुट जाएगा। एक अवस्था के बाद सब छोड़ने योग्य है। एक-एक नीचे आईये। आठ; पतंजलि का अष्टांग योग। आप योगा करते हो तो आपको प्रणाम है। आप योगी है लेकिन अष्टांगयोग में से आप एक भी योग न कर सको, चिंता नहीं। सात; ज्ञान की सात भूमिका है। खटदर्शन, छः दर्शन से एक भी दर्शन हमारे में न हो तो कोई बात नहीं। हो तो अच्छी बात है। एक अंक नीचे उतरो, पांच। पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि। ये पांचों से हम बने हैं। फिर भी पांच में से हम अपने ही बोडी में होते हुए इनमें से कोई एक तत्त्व को आत्मसात् नहीं कर पाते, चलेगा। किशनबिहारी नूर ने कभी गज़ल गाई थी-

आग है, पानी है, मिट्टी है, हवा है मुझ में।
तब तो मानना पड़ेगा कि खुदा है मुझ में।

पंचतत्त्व का हमें ज्ञान न हो, कोई चिंता नहीं। चार; अवस्था चार है-जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया।

चारों अवस्था में से हमें कोई भी अवस्था का ज्ञान न हो, कोई चिंता नहीं, छोड़ो! चलेगा। तीन; करममारग, भक्तिमारग, ज्ञानमारग। कोई मारग के हम पथिक न हो, चलेगा। दो; ईश्वर निर्गुण है कि सगुण है? निराकार है कि साकार है? इसका कोई ज्ञान न हो तो कोई चिंता नहीं। एक; 'चिदानंदरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।।' 'एकोहं बहुस्याम्।' ये तो स्तोत्रों में बोला जाता है। एक वाली बात न हो तो भी चले। दस से एक तक आये। उसके बाद तो क्या रहे? झीरो। लेकिन मुझे आपसे बात करनी है, दो पैरों से पीछे चलो। दो वस्तु का ध्यान रखना बाप! मेरी दृष्टि में मन का प्यार और बुद्धि का विचार केवल सद्गुरु को देना। बस, आ गया दसों लक्षण। आ गई नव भक्ति। आ गया अष्टांगयोग। आ गई सात भूमिका। आ गया खट्दर्शन। संकल्प हम करे, हमारे मन का प्यार और हमारी बुद्धि का विचार हमारे बुद्धपुरुष के सिवा किसीसे प्रति न रखे। लौकिक-अलौकिक इन दोनों का निर्वहण हम विवेक से करे। लेकिन मन का प्यार और बुद्धि का विचार केवल केवल और केवल अपने बुद्धपुरुष पे रखे। चाहे वो आगे चलके करो, चाहे पीछे पैर चलके करो। ये मानसिक स्तर पर है। और जो गुरु को बहुत आत्मसात् करता है वो निकट जा भी नहीं सकता। गुरु जितना उसके निकट जायेगा, पीछे उसको हटना ही पड़ेगा।

तो बाप! सन्मुख रहना, पीछे रहना यानी वो दूरी बनाये रखे। वो चाहता है कि दूरी जरूरी है। कहीं जल जायेगा गुरु की चेतना से! गुरुओं में इतनी चेतना होती है कि उनकी बोड़ी भी इतनी चेतना नहीं सह सकती, दूसरे तो खाक! याद रखना, जब किसी बुद्धपुरुष में परमसत्य उतर जाये इसीलिए गुरु भी सावधान रहता है। परमसत्य को पांच भौतिक बोडी सह नहीं सकती। जिसमें परमप्रेम का अवतरण होता है तो बोडी उसे नहीं बरदास्त कर सकती और परम करुणा को बोडी सहन नहीं कर सकती। इसीलिए सही समय पर बुद्धपुरुष राम-राम कर देते हैं। क्योंकि बोडी की मर्यादा खतम होती है। तो हम भी दिदार के लिए थोड़े पीछे रहे। थोड़ा हटकर रहना पड़ेगा। तब द्वार खुलेगा। तब ठीक से गुरु हमारा दर्पण होता है, वो हमें आत्मसात् होगा।

तो रुद्र का ये अष्टक है ये अष्टमूर्ति का प्रतीक है। और ये मेरी समझ में पहली मूर्ति गुरु दर्पण। दूसरी मूर्ति; गुरु दीपक, गुरु हमारा दीया है। और वो दीये में किसी का उधार तेल नहीं है। किसीने बाती नहीं दी है। वो स्वयंभू प्रकाशित है। और वो रखा कहां जाता है? गुरूरुपी दीप को रखा कहां जाता हैं? हमारे यहां एक न्याय है, दीपदेहली न्याय। दीपक को कमरे में रखा जाय तो बाहर उजाला नहीं होगा और बाहर रखा जाय तो कमरे में उजाला नहीं होगा। इसीलिए गुरु की दूसरी मूर्ति है हमारी देहली पर, हमारे उंबरे पर दीपक बनके कायम रहेता है ताकि हमारे व्यवहार में भी उजाला हो और हमारे अध्यात्म का भी उजाला हो। दोनों में प्रकाशित करे। मेरी सोच में ये दूसरी मूर्ति है जिसको व्यासपीठ दीपकमूर्ति कहती है। तीसरी मूर्ति शिवसूत्र से ले रहा हूं। गुरु उपाय है। मैं फिर एक बार कहूं, मैं बिलकुल पलांठी लगाके बैठ गया हूं क्योंकि मैं बिलकुल मान गया हूं कि हमारा उपाय केवल गुरु ही है, ओर कोई नहीं। सब समय पर छटक जायेंगे। गुरु उपाय है मेरी समझ में अष्टमूर्ति का तीसरा दर्शन है। गुरु के बिना कोई उपाय नहीं और गुरुनिष्ठा में आपकी निष्ठा है, तो दूसरा उपाय खोजना भी नहीं। चौथी मूर्ति; गुरु हमारी दशा है। जीवन में कभी भाव जगे तो समझना ये भी गुरु है। कभी भाव कम हो जाये तो ये दशा भी समझना गुरु है। प्रत्येक दशा का अधिष्ठाता गुरु है।

दर्पण, दीपक, उपाय, दशा और पांचवीं मूर्ति है दिशा। दिशा गुरु है, हमारी गति गुरु है। कौन हमारी गति? कैसे हम गति कर पायेंगे? गुरु ही हमारी गति है। हमारी दशा भी गुरु है, हमारी दिशा भी गुरु है। छठ्ठी मूर्ति, हमारी दृष्टि गुरु है। क्योंकि हमारी दृष्टि हमने वहीं से पाई है। पहले तो हमारे पास दृष्टि नहीं थी। दृष्टि गुरु है। सातवीं मूर्ति है द्वार। गुरु हमारा द्वार है। शीख भाईओं ने अच्छा शब्द पसंद किया 'गुरुद्वार।' गुरु द्वार है। हमारा दरवाजा गुरु है। बाकी तो सब दीवारें है साहब! ठीक है,

रिश्तें-नातें निभाओ लेकिन अनुभव के बाद तो लगता है कि सिर फ़ोड़ने की बातें है सब! सामाजिक प्रतिष्ठायें, रिश्तें-नातें सब दीवार बनके खड़े हैं। द्वार तो एकमात्र गुरु है। उसके द्वारा हमें पता लगता है। उसके द्वारा हमें मुक्ति का अनुभव होता है। आठवीं मूर्ति तलगाजरडी दृष्टि में, गुरु हमारा दिल है। हमारा दिल धड़कता है। रोज अनुभव करो, हमारा गुरु धड़कता है।

तो, भगवान शिव की ये अष्टमूर्ति है। ये रुद्र का अष्टक है। उसको केन्द्र में रखते हुए हम कुछ विशेष गुरुदर्शन करने के लिए यहां बैठे हैं। आईये, कुछ दर्शन करें। देखो श्रोता भाई-बहन, आप पूरे 'रुद्राष्टक' में गिनती करोगे तो आपके ढंग से ज्यादा-कम सूत्र मिल सकते हैं। लेकिन जिस रूप में गिनती कर रखी है वो गुरु के बत्तीस लक्षण है 'रुद्राष्टक' में। नीतिकार लोग ऐसा कहते हैं कि अच्छा राजा हो उसे बत्तीस लक्षण होते हैं। किसी के घर अच्छा पुत्र जन्म ले तो कहे, लड़का बत्तीस लक्षणा है। हम तो गुरु के सन्मुख जीनेवालें, उसकी मुस्कुराहट पर जीनेवालें, इसलिए हमें तो केवल गुरु में बत्तीस लक्षण दिखते हैं। ये 'लक्षण' शब्द भी ठीक नहीं; लेकिन भाषा की मर्यादा है, मैं क्यां करूं?

एक भाई ने पूछा है, 'बापू, बार-बार सुख-दुःख हुआ करता है, क्या करें?' भोगो! सुख हो तो विवेक से भोगो, दुःख हो तो फिर थोड़ा रो कर भोगो। क्या करें? एक औषधि है मेरे पास। कडवी नहीं, मीठी है, स्वादु है। मैंने इस औषधि ली है। फायदा हुआ है। मैं अपनी जात को बीच-बीच में आपको अपना समझकर रखता हूं। दादा की एक बात कहूं। आहाहा...! व्हेन आई वोझ टेन यर्स ओल्ड अबाउट। स्मृति कब बाहर आती है, पता नहीं चलता! मैं 'रामायण' पढ़ रहा था दादाजी के पास। ये आप लोगों की मांग भी है कि बापू कहते रहे जो बात आये। मुझे शौक तो नहीं है लेकिन सबको अपना समझता हूं तो आपके साथ शेर करने की इच्छा होती है। हम जिस मकान में रामजी मंदिर की गली में रहते थे। उसको रखा गया है, ठीक रखा है उसको संभालकर। वो मिट्टी का घर छोटा-सा। उसका जो दरवाजा था, बाहर आने के लिए, अंदर आने के लिए। दरवाजा खोलो और परसाल, वहां बैठकर मैं 'रामायण' का पाठ जो दादा पढ़ाये वो सीखता था। वो दरवाजा मुझे चित्रकाम नहीं आता वर्ना मैं वो चित्रित करके बताता। ऐसा दरवाजा दुनिया में किसी के घर में नहीं होगा! अल्लाह करे, न हो! जैसे साहब, फ़टे हुअे कुरते पर या पायजामे पर लोग थीगड़ें लगाते हैं, कभी एक पाटिये का टुकड़ा रखा, कभी ब्रूकबोन्ड टी के बोक्स आते हैं, उसका टुकड़ा लगा दिया! कभी वांस का लगा दिया! कभी कोई पत्ता लगा दिया! खबर नहीं, ये कैसा दरवाजा था! और उस काल में ये नकुचा और ये सब कहां यार! अभाव में देहातों में तो एक भुखरे पथ्थर, उसमें एक गड्ढा बनाते हैं। एक उपर रखते हैं, एक नीचे। इसमें से ये घूमता रहता है। खुला, बंद हुआ। ये ही उनका खुलना, बंद होना, दरवाजे की गति थी। ऐसा दरवाजा था कि मानो द्वार ही द्वार था! कोई भी अंदर से बाहर देख सकता है, बाहर से अंदर देख सकता है। और उसको जब बंद करना होता था तो उसे बलपूर्वक उपर उठाना पड़ता था, फिर बंद होता था। फिर खोलना है तो फिर उंचा करो, फिर खोलो! मैं शायद दस साल का रहा होगा। मैं तो नहीं कर पाता था। माँ करती थी। उपर उठाये, खोले; उपर उठाये, बंद करे। पिताजी करते थे। दादाजी करते थे। दादीमाँ चली गई थी।

मेरे मन में एक पीड़ा बनी रही थी कि माँ को ये कितना कष्ट करना पड़ता है! और करे भी क्या? लाये कहां से दरवाजा? खबर नहीं, कैसा ये दरवाजा था? 'मानस' का पाठ चल रहा था और मेरे से बालभाव में दादाजी से पूछा गया कि दादा, इस साल ये दरवाजा ठीक हो जाये ऐसा कुछ हो सकता है? मुझे पता था कि नहीं होगा। दादाजी भी जानते हैं कि कैसे हो? बच्चे को ना कहूं तो भी उसको पीड़ा है! और मेरी पीड़ा यह थी कि माँ को कष्ट होता था। पिताजी को, दादाजी को उपर उठाना; ये करना, वो करना! और कई बार ऐसा करना पड़ता था! अब देखो सा'ब, नौ-दस साल की उम्र में अचेतन मन में डाला गया ये सूत्र आज सुबह मेरी

आंसूभरी आंखों में आया! उस समय दादा बोले थे बेटा, दरवाजा मैं हूं। आप कल्पना कीजिए! मुझे लगता है, बुद्धपुरुष सही समय पर सूत्र डाल देते हैं। पनपे कभी भी। अब मेरे लिए तो कितने बुद्धता के बोल है! आज मैं सोचता हूं तो शत-प्रतिशत सत्य है कि गुरु ही द्वार है। ये दरवाजे से क्या लेना-देना है? मेरे जवाब को टालने के लिए कहा गया कि उसको पीड़ा हो रही है! गुरु द्वार है, गुरु ही परिचय करा देता है।

तो मेरे भाई-बहन, उस समय कहा गया था कि द्वार हम है और आज ये लगता है कि बाकी तो सब दीवारें है। मान-प्रतिष्ठा, बड़प्पन ये सब दीवारें नहीं है तो क्या है? लोगों का राजीपना भी दीवारें है। आप कब तक राजी रहोगे? आपकी बात ठीकठीक मैं कहूंगा तो आप राजी रहोगे वर्ना नाराज हो जाओगे! कोई ठिकाना किसी का नहीं है! तो, सुख-दुःख बहुत सताते हैं, क्या करें? भोगो! लेकिन मैं एक बात आपसे करता हूं कि यदि पानी परमात्मा न बनाये तो भगवान को प्यास देने का हक़ नहीं। बिना पानी बनाये भगवान हमें प्यास दे तो भगवान बेईमान है। बिना अन्न बनाये हमें भूख दे तो परमात्मा बेईमान है। वैसे परमात्मा ताले बनाने से पहेले चाबियां बना देते हैं। समस्याओं के तालें बाद में बनते हैं। गुरु के पास चाबियों के झूंड के झूंड ओलरेडी पहले है। कोई समस्या ऐसी नहीं कि जिसकी कुंजी न हो। सवाल क्या है कि चाबियां या तो गलत जगह पर रख दी है या गलत हाथों में गई है! या तो हम गलत जगह चाबी खोजने जा रहे हैं! यहां से समाधान मिलेगा, वहां से मिलेगा! या तो प्रपंची और धोखेबाजों के हाथ में चाबियां चली गई है। यद्यपि मैं गुरु तो नहीं पर एक चाबी है मेरे पास, जो मुझे अनुभव में ठीक लगी है। दादा को आत्मसात् करते-करते अब उनकी स्मृतियां ताजी हो रही है इसीलिए कितना मैं संभाल पाउंगा, आई डोन्ट नो। तो एक चाबी है। सुख-दुःख हमें कुछ नहीं कर सकता, स्वीकृति को प्रकृति बना दो, बस। सुख आया, स्वीकार; दुःख आया, स्वीकार। अपमान आया, स्वीकार; सन्मान आया, स्वीकार। जो स्वीकृति को प्रकृति बनाना स्वभाव धारण कर लेगा उसे सुख-दुःख हैरान नहीं कर सकेगा। यद्यपि कठिन तपस्या है। हर चीज स्वीकार लेना बहुत मुश्किल है, कठिन है।

तो, बत्तीस लक्षण नहीं, गुरु के बत्तीस स्वभाव। मैं यदि विश्लेषित करूं तो और भी हो सकता है, कम भी हो सकता है। लेकिन मैंने आपके सामने इस कथा में कहने के लिए बत्तीस लक्षण निकाले हैं 'रुद्राष्टक' के आधार पर। पहला गुरु का स्वाभाविक लक्षण-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।

बुद्धपुरुष का पहला स्वाभाविक लक्षण; 'हे ईशान दिशा के ईश, मेरा नमन कुबूल करो।' गुरु क्या है? ईशान का ईश है। प्रत्येक दिशाओं के विशिष्ट देवता है। पूर्व दिशा के देवता का नाम है सूर्य। पश्चिम दिशा के देवता है तमस और जिसमें तमकी प्रधानता है उस देव में एक है यम। मृत्यु के देवता को भी तमस कहते हैं ग्रंथों में। वो पश्चिम दिशा के देवता माने गये हैं। उत्तर दिशा के देवता है भगवान विष्णु, भगवान नारायण, हरि, जो कहो। धर्मस्वरूप परमात्मा उत्तर दिशा के देवता है। और दक्षिण दिशा के देवता को यम कहा है। आपको डराने की बात नहीं लेकिन सपने में आप बार-बार दक्षिण दिशा की ओर दौड़ो तो समझना कि पीछेवाले को क्रियाकर्म करने का समय आ गया है! डरना क्या यार! लेकिन थोड़ी कमाई कर लीजिए। जिसके पास ज्यादा पैसा है उसे कभी हल्दी महंगी हो जाये, कभी सोने के भाव बढ़ जाये, कभी दाल महंगी हो जाये उसे क्या फ़र्क पड़ता है? जिसके पास भजन की कमाई हो उसे मौत क्या कर सकती है? आयेगी तो आयेगी! ये ध्रुव है, निश्चित है।

तो, डरना मत। दक्षिण में जाना पड़े तो कांचीपुरम् हो आना, डरना मत। यहां मृत्यु नहीं है, मृत्युंजय महादेव बैठा है। उपर के देवता का नाम इन्द्र है। नीचे के देवता नाग है। वायुदेव वायव्य कोण का देवता है। प्रजापति नैऋत्य कोण का देवता है। अग्निदेव स्वयं

पावक अग्नि कोण का देवता है लेकिन ईशान कोण का देवता मेरा महादेव है। गुरु ईशान का ईश है। 'ईशान' बहुत प्यारा शब्द है और उनका ईश महादेव है। प्रश्न ये उठेगा कि ईश का मतलब क्या है? शब्दकोश में तो 'ईश' शब्द के कई अर्थ मिलेंगे लेकिन मेरे लिए तो 'मानस' ही दुनियाभर का शब्दकोश है। एन्साइक्लोपीडिया है मेरे लिए मेरा 'मानस।' मुझे तो वहीं से उसका अर्थ मिलता है। ईश किसे कहते हैं? जिसको चाहे बड़ा बना दे इसे ईश कहते हैं। वो जिसको चाहे उसको बड़प्पन दे दे, इज्जतदे दे, प्रतिष्ठा दे दे। और शंकर ये काम करता है। बड़प्पन देता है। हृदय से सोच करके किये हुए कर्म का फल दे उसे ईश कहा है 'मानस' में। हमारे जीवन में बार-बार आये हुए विघ्न को जो बार-बार हटाने का काम करे, उसको 'मानस' ने ईश कहा है। ईश को पालक भी कहा है। ईश मानी इश्वर, परमतत्त्व, पालक, पिता जो कहो। तो, गुरु के बारे में देखें तो वो पालक भी है। वो हमारे विघ्न को हटाता है। वो हमें बड़प्पन देता है। गुरु के बिना कौन बड़प्पन देता है? 'रामायण' को गुरु मानकर चलें तो 'रामायण' बड़प्पन देता है।

मैं बहुत आदर के साथ आपको कहना चाहूंगा कि गुरु के आश्रय में जिसकी पूर्ण निष्ठा है उसे मोक्ष-बोक्ष की बातें नहीं करनी चाहिए। क्योंकि गुरु ही निर्वाण है। हिमालय में जाकर आप ये नहीं कह सकते कि आपको ठंडी की अपेक्षा है। क्योंकि हिमालय ठंडीरूप है। एक बुद्धपुरुष मिल गया, निर्वाण हमारी मुठ्ठी में आ गया। गुरु का रूप ही निर्वाण है। गुरु मिला, मोक्ष मिला। मैं क्यों मोक्षवादी आदमी नहीं हूं? मैं मोक्ष के पक्ष में हूं ही नहीं। मोक्ष क्या है, मेरे लिए प्रश्नार्थ है। मोक्ष क्या है? गुरु मिला, मोक्ष हो गया। 'निर्वाणरूपं'; स्वाभाविक लक्षण है बुद्धपुरुष का, जो निर्वाणरूप है। गुरु के पास पहुंचना, निर्वाण के पास पहुंचना है। ये गुरु का स्वाभाविक लक्षण है। विभु और व्यापक तत्त्व को जोड़ना चाहता हूं, क्योंकि मैं समझता हूं, जो व्यापक होता है वो ही विभु है, बाकी तो सब लघु है, सब छोटे हैं। मैं प्रार्थना करूं आपको कि कहीं हम धोखे में न रहे! जिसका दृष्टिकोण बहुत व्यापक है, उसको गुरु समझना। उसको विभु क्यों, उसको प्रभु समझना। अरे प्रभु क्यों, उसको शंभु समझना। विभु ही प्रभु है। विभु

ही शंभु है। हम कितने छोटे-छोटे, संकीर्ण हो गये हैं! तो, विभु है वो व्यापक है। जो व्यापक है वो विभु कहलाने योग्य है।

विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।

अब 'ब्रह्म' और 'वेद' दो शब्द आये हैं। आप दो भी स्वाभाविक लक्षण मान सकते हैं गुरु के और एक भी मान सकते हैं। लेकिन मेरी मानसिकता उसको दो कहने की है। गुरु का एक स्वाभाविक लक्षण है वो ब्रह्मरूप है। जैसे निर्वाणरूप है, वैसे गुरु वेदांत में ब्रह्मरूप है। 'गुरु साक्षात् परब्रह्म।' हमने उसको परमब्रह्म कहा है। गुरु ही ब्रह्मरूप है। गुरु आश्रय में निष्ठावालों के लिए ओर कोई ब्रह्म नहीं; कोई ब्रह्म नहीं। मेरा गुरु मेरा ब्रह्म। पक्की निष्ठा का ये ही उच्चारण हो सकता है। वेद पढ़ो, स्वाध्याय करो। बहुत जरूरी है वेद। उसका और विस्तार हो। लेकिन गुरुनिष्ठ को यदि वेद समझ में न आये, पढ़ने का समय न हो, रुचि न हो तो गुरु स्वयं वेदस्वरूप है। ये बात मुझे बहुत अच्छी लगी है। ओशो ने कहा था कि बुद्धपुरुष सभी शास्त्रों का पुनरावतार है, पुनर्जन्म है। कभी-कभी ऐसे-ऐसे बुद्धपुरुष संसार में आते हैं कि उनके पास बैठने से लगता है कि उसमें वेद भी है, बाईबल भी है, कुर्रान भी है, धम्मपद भी है, आगम भी है; इसमें ये भी है, इसमें वो भी है। किताबें जरूर पढ़िये। और वेद के बारे में तो संशोधन हो रहा है। होना चाहिए। वेद का सबको अधिकार नहीं, क्योंकि कठिन-जटिल है। गुरु हमारे लिए वेदरूप है, अवश्य।

मैं जब-जब कोई स्मृति खुलती है तो स्तंभित-सा रह जाता हूं कि दादा ने ये वेदवाली बात कहां से निकाली! दादा कोई वेद पाठशाला में पढ़ने तो नहीं गये। मैंने कई बार कहा कि हरे रंग की एक छोटी-सी अलमारी, जहां हम रहते थे उसमें संस्कृत ग्रंथ थे। अवश्य, संस्कृत ग्रंथ अपने ढंग से वो देखते रहते थे। कई निशानी भी करते थे। लेकिन मैं जब पाता हूं, समझता हूं, स्मृति में बीजली-सी दौड़ जाती है! लगता है, वेदस्वरूप है। गुरु को वेद मानो। और ग्रंथ के रूप में वेद है उसकी महिमा अनंत है, लेकिन फिर भी दूसरे धर्मावलंबी वेदों की आलोचना करेंगे! ये नौबत आ सकती है। लेकिन जिसके लिए गुरु ही वेद बन जाये। वेद का एक अर्थ है, जानना। जानने योग्य क्या है? गुरु। गुरु को पढ़ो। गुरु का स्वाध्याय करो। गुरु का दर्शन करो। कहीं कुछ मौका आये तो चुकना मत। कोई भी बुद्धपुरुष मिल जाये तो उनका दर्शन। और हम मानव हैं। मानव की आकृति में है इसलिए गुरु भी मानव की तरह हम देखना चाहते हैं। और मानव रूप में गुरु को देखते हैं तब राग-द्वेष हुए बिना नहीं रहता! वो ही गुरु जिन्हों ने निर्वाण तक की बातें तुम्हारे जीवन में स्थापित की उनका द्वेष लोग करने लगेंगे! क्योंकि एक फोर्म में लोग देखते हैं। और मेरा दो-तीन कथाओं से एक निवेदन बार-बार समाज के सामने आ रहा है कि प्लीज़, प्लीज़, प्लीज़, साधु को कभी साधन मत बनाना। साधु हमारा साध्य है। हमारा लक्ष्य गुरु है। आप कोई भी मंत्रजाप करते हो, अनुष्ठान करते हो, पाठ करते हो लेकिन आपका गुरु आ जाये तो अनुष्ठान पूरा हो गया समझ लो। उसी समय ऐसे ही बैठे रहना! जो ये प्रसंग में गुरुद्रोह है। विष्णुद्रोह तो करता था बेचारा। शिवद्रोह भी होता था। लेकिन जब गुरुद्रोह लगा तब महाकाल कांप उठा! तब वो एक शब्द गुरु के लक्षण में आया-

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं ।
अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।।

'प्रचंडं' का अर्थ है भीषण। एकदम रुद्र बन गया, तेरी ये हिंमत? तू तेरे गुरु का अपमान करता है? भयंकर-भीषण। प्रकृष्ट का अर्थ है श्रेष्ठ। प्रकृष्ट माने उत्तम। मेरे गुरु से श्रेष्ठ कोन है? ये कोई तुलना नहीं कि दूसरे को निम्न समझना। नहीं, लेकिन दूसरी जगह देखने का टाईम कहां है? मैंने श्रेष्ठ को देख लिया। दूसरे देखूं तो कोई निम्न दिखाई दे। भेद पैदा हो जाये। 'प्रगल्भं' का अर्थ है तेजस्विता, आभा। ये बुद्धपुरुष का-शिवलक्षण है। 'निजं'; निजं का एक अर्थ है, जो बिलकुल स्वतंत्र है, निजतंत्र है, किसी के बंधन में नहीं है, इतना निज है। और मेरी बात समझ में आये तो प्रार्थना के रूप में कहूं, सब लूट जाये तो लूट जाने देना, निजता कहीं खो न जाये, बस। अपना स्वभाव कहीं धर्मान्तरित न हो जाये। बुद्धपुरुष का लक्षण है स्वस्थिति में स्थित रहना।

'निर्गुणं'; बुद्धपुरुष वो हैं जो निर्गुण है; सत्त्व, रज, तम से मुक्त है। अथवा साकार-निराकार आदि-आदि द्वंद्वों से पर है। किसी बुद्धपुरुष के बारे में कोई गुण का निरूपण हम नहीं कर पाते कि ये तमोगुणी है। कभी आपको लगेगा कि उग्र बोले हैं! कभी लगेगा कि बहुत मौज में है! कभी लगेगा कि बहुत शांत है! गुण का आरोप हम करे फिर भी असफल रहेंगे। ये निर्गुण है। 'निर्विकल्पं'; जिसके जीवन में कोई विकल्प नहीं, कोई भेद नहीं! विकल्प का अर्थ है कोई चुनाव नहीं। ये नहीं तो ये, ऐसा नहीं; सीधा-सादा अर्थ, अभेद। और मुझे बहुत प्यारा लगा लक्षण बुद्धपुरुष का 'निरीहं'; 'निरीहं' का सीधा-सा अर्थ है इच्छारहित। जिसके जीवन में कोई इच्छा नहीं, कोई आशा नहीं, कोई ख्वाहिशें नहीं, कोई कामना नहीं। 'चिदाकाशमाकाशवासंभजेऽहं।' हे महादेव! हम आपका भजन करते हैं। ऐसा तू परमात्मा है, जो तेरा वास आकाश में है। तू आकाश में छाया हुआ है। आकाश माने उपर ही नहीं, पृथ्वी के नीचे भी आकाश है। सब जगह आकाश ही आकाश है। कोई खाली नहीं। अथवा तो तुने आकाश को ओढ़ा है। तेरा वस्त्र आकाश है। जैसे दिशायें वस्त्र है। दिशा जिसके वस्त्र है। लेकिन वो सीमित है। आकाश जिसका वस्त्र है। जिसने आकाश को ओढ़ा है वो तू है। मतलब जो आकाश में बस रहा है, आकाश में बिलकुल समाहित है। आकाश, एक गेब को ओढ़ा हुआ है इसने; एक खालीपन से वो समृद्ध है, ऐसा उसका अर्थ किया जा सकता है। यह पहला टुकड़ा गुरु का स्वाभाविक लक्षणवाला मेरी समझ में वो 'नमामि'से शुरू होता है और 'भजेऽहं' में पूरा होता है। नमामि क्रिया है। मैं नमस्कार करता हूं, मैं नमन करता हूं। ये क्रियाप्रधान वस्तु है। जैसे दंडवत् करे, हाथ जोड़े, नमस्कार करे ये क्रिया है। 'भजेऽहं', मैं भजता हूं। ये कहना पड़ता है, भजता हूं लेकिन ये क्रिया नहीं है, भावजगत की समृद्धि है। ऐसे मार्क किये हुए बत्तीस लक्षण 'रुद्राष्टक' में है। इसकी प्रधान रूपमें हम चर्चा करेंगे। आगे-आगे गोरख जाने! राजेन्द्र शुक्ल कहते हैं-

ना कोई बारुं ना कोई बंदर, चेत मछंदर।
आपे तरवो आप समंदर, चेत मछंदर।

अब थोड़ा कथा का क्रम। हनुमानजी की वंदना कल पहले दिन की। उसके बाद सखाओं की वंदना। उसके बाद सीता-रामजी की वंदना। उसके बाद हरिनाम की वंदना तुलसीदासजी ने की। नाम-महिमा का गायन गोस्वामीजी ने किया। और यही तो सार है। यही तो आखिरी तत्त्व है भजनानंदीओं के लिए। कलियुग में केवल नाम आधार है। मेरा मत क्या पर मेरा निर्णय ये जरूर है कि आखिर हरिनाम; निर्णय तो मेरा सदा-सदा यही है। शायद पहले भी यही रहा होगा। अभी है और अनंत यात्रा में यही रहेगा हरिनाम। युवान भाई-बहनों को मैं बार-बार कहता हूं कि आपके मनमें जिस नाम के प्रति रुचि हो। और कोई एक घंटे, पांच घंटे बैठने की जरूरत नहीं। लेकिन मधुसूदन सरस्वतीमहाराज का आश्रय लेकर मैं अकसर कहता रहता हूं कि तुम्हारा सब कार्य पूरा हो जाये और नींद न आती हो तो मेरी व्यासपीठ यही मांगती रहती है कि दो-पांच मिनट अपने इष्ट का नामस्मरण। नाम एक चिनगारी है। जिसको मानो, जो तुम्हारा इष्ट हो उसका सुमिरन ये कलियुग की प्रधान साधना है।

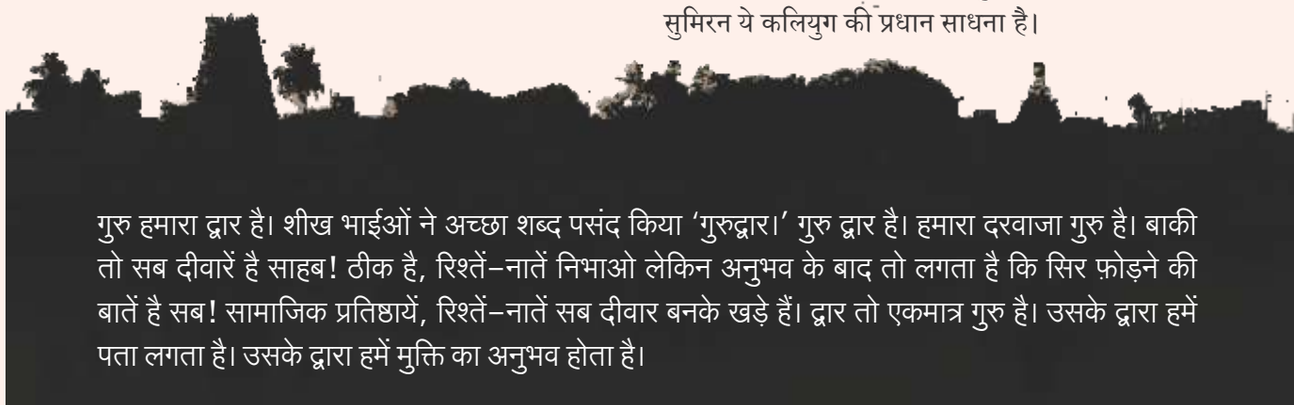

गुरु हमारा द्वार है। शीख भाईओं ने अच्छा शब्द पसंद किया 'गुरुद्वार।' गुरु द्वार है। हमारा दरवाजा गुरु है। बाकी तो सब दीवारें है साहब! ठीक है, रिश्तें-नातें निभाओ लेकिन अनुभव के बाद तो लगता है कि सिर फ़ोड़ने की बातें है सब! सामाजिक प्रतिष्ठायें, रिश्तें-नातें सब दीवार बनके खड़े हैं। द्वार तो एकमात्र गुरु है। उसके द्वारा हमें पता लगता है। उसके द्वारा हमें मुक्ति का अनुभव होता है।

परमतत्त्व परम भोगी भी होता है और परम योगी भी होता है

हम इस कथा में उज्जैन स्थित महाकाल मंदिर में एक परम पुरुष द्वारा गाई गई भगवान महाकाल की स्तुति को, बुद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षणों के विशेष रूप में गुरुकृपा से देखने की विनम्र कोशिश कर रहे हैं। कल का निवेदन याद रहे कि मेरी अपनी निज दृष्टि से मैं 'रुद्राष्टक' से बुद्धपुरुष के बत्तीस लक्षण निकाल पाया हूं। गुरु अनंत है। उनके गुणों का कोई पार नहीं। उनके लक्षणों की, उनके स्वभाव की कोई सीमा नहीं। यद्यपि अपनी औकात के अनुसार हमने विनम्र चेष्टा की है। कभी-कभी मैं महसूस करता हूं कि ये 'रुद्राष्टक' दशों दिशा में कोई गा रहा है। कोई उत्तर में, कोई दक्षिण में, कोई पूरब में, कोई पश्चिम में। इन नाद से ये पूरा ब्रह्मांड गुंज रहा है। मेरे निज अनुभव में ऐसा कोई अष्टक नहीं, जो दशों दिशायें गाती हो। शायद इसीलिए पूज्यपाद गोस्वामीजी तुलसी ने ये भुजंगप्रयात में उतारा इसको। इसके प्रत्येक चरण के दस-दस अक्षर होते हैं। नववां सदैव लघु होता है। ये जो इसका बंधारण है। इसका एक संकेत है। ये दशों दिशा में कोई गा रहा है। काश, हमारे कान सुन पाये! मुझे एक साधक ने पूछा, 'बापू, भगवान शिव के सन्मुख ये 'रुद्राष्टक' गायें?' मैं तो वहां तक पहुंचा हूं कि शिव तो परमतत्त्व है लेकिन अपने गुरु का स्मरण करके गाओ 'रुद्राष्टक।' 'रुद्राष्टक' अपने-अपने निज बुद्धपुरुष की स्तुति है। क्योंकि उसमें सभी स्वाभाविक लक्षण समाहित है।

स्तुति तो गाई गई महाकाल के मंदिर में क्षिप्रा के तट पर लेकिन दृष्टि है कैलास की ओर। और खुशी होती है ये जानकर कि कैलास ईशान कोण में है। कैलास का जो कोण है वो ईशान है। शिव ब्लेक एन्ड व्हाईट है। यद्यपि शिव में कई रंग है। जिन्होंने कैलास का प्रत्यक्ष दर्शन किया है उसको पता है कि ये ब्लेक एन्ड व्हाईट है। बर्फीली चट्टानें है ये गौर है। जहां बर्फ नहीं है, वहां काली चट्टानें है। जो निर्वाण रूप है वो ईशानवाले ईश को मैं प्रणाम करता हूं। यहां रूप और स्वरूप दोनों की चर्चा गोस्वामीजी ने उठाई है। गुरु निर्वाणरूप है और ब्रह्मस्वरूप है। रूप बहिर् होता है, स्वरूप भीतर होता है। गुरु को बहिर् रूप में निर्वाण समझो। गुरु को स्वरूप के रूप में साक्षात् ब्रह्म समझो। कैलास है ईशान कोण का। और एक बात ये भी है कि ईशान कोण में ग्यारह रुद्र निवास करते हैं। इसीलिए श्री हनुमानजी भी ईशान के देवता है। तत्त्वतः दोनों एक ही तो है।

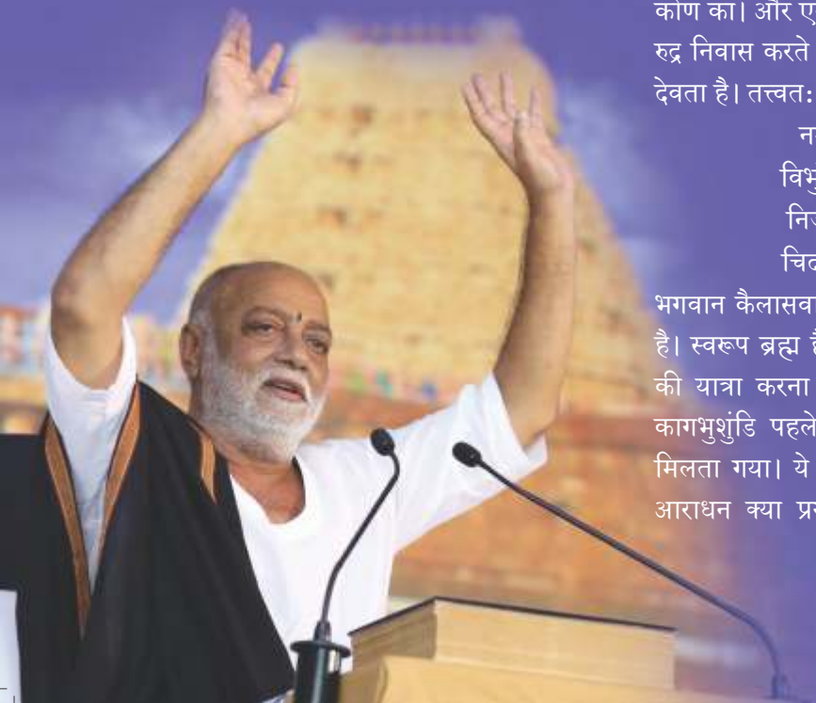

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।

भगवान कैलासवासी ईशान के ईश है। उनका रूप निर्वाण है। स्वरूप ब्रह्म है। व्यक्ति को चाहिए रूप से स्वरूप तक की यात्रा करना। ये पूरा प्रसंग जो है 'उत्तरकांड' का। कागभुशुंडि पहले शूद्र थे। इजाफ़ा होता गया, प्रमोशन मिलता गया। ये मूलतः शूद्र थे, फिर ब्राह्मण हुए। शिव आराधन क्या प्रगति नहीं कराता? और आखिर में वो कौआ बन गया। वर्णों से पर हो गया भुशुंडि। निम्नता से उच्चतर यात्रा करते-करते सब से पर हो गया। 'परेशं'; ये है 'परेशं।' कितना उर्ध्वीकरण हुआ है इस महापुरुष का गुरुकृपा से! और ये भुशुंडि कितना बड़भागी कि दो ऐसे परम वक्ताओं से कथा का लाभ मिला। एक शंकर से सुनी; दूसरी लोमस से कथा पाई। तो ये साधक के निरंतर उर्ध्वीकरण की प्रक्रिया है। गुरुमहिमा का ऐसा प्रसंग अन्यत्र मिलना मेरे व्यक्तिगत अभिप्राय में करीब-करीब दुर्लभ है।

प्रश्न आया है, 'बापू, 'मानस' में भगवान राम ने वाल्मीकिजी से रहने के स्थान पूछे हैं; चौदह स्थान बताये हैं। तो हम कहां रहे ये आप हमें बता सकते हैं?' कुछ स्थान बताउं? रहोगे? यदि रहना है तो यहां-यहां रहो। एक, विचार में रहो। साधक को विचार में जीना है। विचारशील रहो। कथा दो रीत से सुनी जाती है, क्योंकि कथा के दो स्थान है। एक तो 'सकल लोक जगपावनी गंगा।' गंगा तो मस्तक से निकली। तो कथा का उद्गमस्थान बुद्धि बताया है, ज्ञान बताया है। ज्ञान तो बुद्धि का प्रदेश है और बुद्धि मस्तक में रहती है। तो कथा निकली है ज्ञान से, बुद्धि से। और गोस्वामीजी ये भी कहते हैं-

रचि महेस निज मानस राखा ।
पाई सुसमउ सिवा सन भाषा ।।

'मानस' माने हार्ट। मेरे श्रोताओं से मेरी प्रार्थना है, कथा बुद्धि से सुनो और हृदय से पहचानो। वक्ताओं को भी चाहिए बुद्धिपूर्वक बोले और हृदय से परिपक्व करे। जैसे हम पढ़ते थे, पढ़ाते थे तो विज्ञान का कोई सिद्धांत पहले बौद्धिक रूप से समझाया जाता था, फिर प्रयोगशाला में उसका प्रयोग करवाया जाता था, इति सिद्धम्। उसका मतलब है, कथा बुद्धि से सुनी जाय और हृदय की प्रयोगशाला में उसका प्रयोग किया जाय तभी सत्य परिणाम आता है। लोग पूछते हैं, लोग इतनी कथा सुनते हैं कोई परिणाम क्यों नहीं आता? कथा सुनते हैं वो ही परिणाम है। कोई किसीका सुनता नहीं यहां पर! और इतने लोग सुनते हैं ये ही परिणाम है। आदमी को चाहिए विचार में रहो। अधिक विचार नहीं और विचारशून्य भी नहीं। बुद्ध जिसे सम्यक् विचार कहते हैं। योगसाधना में समथल भूमि पर बैठने को कहा है। आदमी विचारशील होना चाहिए।

लोगों को ये भी पीड़ा हुई कि बापू, आपने कह दिया कि शिष्य की भूल को गुरु को भोगना पड़ता है। हां, भोगना पड़ता है। यद्यपि गुरु कृपालु होते हैं। इनके समान ईश्वर भी कृपालु नहीं। गुरु-अपमान को बड़ा दोष माना है 'मानस' में। हमारी आध्यात्मिक प्रगति का अवरोधक बल ये है कि हम द्वेष से गुरु को भी नहीं छोड़ते! हम एक-दूसरे का द्वेष न करे। मैं सावधान करता हूं, डरना मत। ये निंदा नहीं है, निदान है। बड़े-बड़े धर्मदाता भी बचे नहीं साहब द्वेष से! किसी बुद्धपुरुष से किसी को आदर दिया और आपके सामने ठीक से आदर व्यक्त नहीं हुआ, तो आपके मनमें गुरु-अपराध पैदा नहीं होता? ये द्वेषवाली प्रकृति गुरु-शिष्य के बीच में भी प्रगट होती है। ये आदमी जिसके लिए गुरु ने 'रुद्राष्टक' गाया ये बार-बार अपने गुरु से द्वेष करता है! वहां तक उसको लगता था कि मेरा गुरु नासमझ है। भुशुंडि का द्वेष बढ़ता चला, बढ़ता चला! और गुरु का ही अपराध क्यों? दुनिया में किसी का भी अपराध न करे। तुम्हारें मन में बदला लेने की वृत्ति नहीं है? मैंने तो कथा के आयोजनों में भी पाया है। सालों से बोल रहा हूं कि एक आयोजक दूसरे आयोजक से बदला लेने पर तुल जाता है कि तुम्हारे आयोजन में हमको ठीक से सन्मान नहीं मिला, देख लूंगा! एक ओर तुम लाखों रूपियों का खर्च करते हो पर तुम्हारा इरादा ये ही हैं! आयोजकों को मैंने लड़ते हुए देखा है! आप (श्रोता) भी कोई कम नहीं है! और कहते हो गुरु-अपराध क्या है, बताईये! मेरे बताने से जो हो जाता तो कब का हो गया होता! पूछिये अपनी आत्मा को। यद्यपि गुरु बहुत कृपालु होता है। शाप शंकर ने दिया, हाहाकार गुरु को हुआ! मुझे लगता है कि उस

समय जो चीखा होगा ये बुद्धपुरुष कि खबरदार महादेव, मेरे बच्चे को शाप दिया तो! जैसा भी है, मेरा है। तेरी शरण में भेजनेवाला भी तो मैं हूं।

गुरु का हाहाकार करुणा की असीमता उद्घोषित करता है। मैं और आप हम सब गुरु-अपराध से बचें। अपने पर बहुत सोचें। यदि हम सत्य के, प्रेम के, करुणा के उपासक है तो कुछ वस्तु के बलिदान देने के लिए हमें तैयार रहना ही पड़ता है। यू मस्ट। जो सत्य को समर्पित है उसे छ वस्तु को तिनके की तरह त्यागने की तैयारी रखनी पड़ेगी। तो ही सत्य का उपासक हो पायेगा, वर्ना व्याख्या है उसके अलावा कुछ भी नहीं! एक, शरीर; समय आये शरीर को तिनके की तरह त्यागना पड़ता है। स्त्री सत्य की उपासक है तो पति का; पति सत्य का उपासक है तो पत्नी का तिनके की तरह त्याग करना ही पड़ेगा। सत्य के उपासक को पुत्र, परिवार को मौके पर तिनके की तरह त्यागना पड़ता है। सत्य के उपासक को अपना मठ, अपना घर, अपना स्थान, पीठ, आश्रम उसको भी बलिदान देने के लिए तैयार होना पड़ता है। धन; सत्य के उपासक को धन को भी त्यागना पड़ता है तिनके की तरह। समय आने पर पूरी धरती को भी त्यागना पड़ता है।

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी ।

कैकेयी के मुख से अमृतवचन तुलसी ने दे दिये-

सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ।।

'हे महिपति, सत्य के उपासक को यह छ वस्तु तृणसम त्यागना पड़ता है। अब आईये व्यासपीठ के पास। सत्य के बारे में तो तुलसी ने लिख दिया। प्रेम के बारे में? प्रेम के बारे में भी ये छः को तिनके की तरह त्यागना नहीं पड़ता, फूल की तरह किसी को समर्पित करना पड़ता है। प्रेम के उपासकों को ये छः को त्यागना नहीं है, फूल की तरह उसकी फोरम को फैलाना है। उसमें रसिकता है। उसमें आशीर्वादक खुश्बू है। प्रेमवाला आदमी तोड़ता नहीं। शरीर को भी अच्छे ढंग से रखेगा ये तिनके की तरह। अपने शरीर को बरबाद नहीं कर देगा। प्रेम कहता है, शरीर को तोड़ो मत, उसकी खुश्बू फैलाओ। जो परमतत्त्व होता है, उसमें दोनों होता है। एक हो, एक न हो तो परमतत्त्व अधूरा है। तुलसीदासजी 'मानस' में लिखते हैं-

आनन रहित सकल रस भोगी ।

परमतत्त्व सकल रसभोगी है। तुलसी बड़ा क्रांतिकारी आदमी है। कई लोगों ने तुलसी को लकीर का फ़कीर बताकर तुलसी का अपराध कर दिया है! तुलसी कहता है, परमतत्त्व परम भोगी होता है। परम तत्त्व परम योगी होता है। मेरा निवेदन नहीं है, गोस्वामीजी का निवेदन है। शंकर क्या है? ईशान का देव क्या है? परम योगी। परम योगी शंकर एक ओर परम भोगी!

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा ।

गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ।।

परम भोग महादेव का। और जोगी शिव। परमतत्त्व सब कुछ होता है। तुलसी रुक गये। जगत के माता-पिता है उनके भोग का ज्यादा वर्णन नहीं करूंगा। तो बाप! परमतत्त्व पूर्ण होता है। गोस्वामीजी के इन क्रांतिकारी वक्तव्य को अनदेखा, अनसुना कर दिया गया! हम इन परमतत्त्व के योग को और भोग को किस दृष्टि से देखते हैं वो डिपेन्ड करता है। इसलिए बुद्धि से सुनो और हृदय से प्रयोग करो। वर्ना हम अपराध करने में देर नहीं करते! पार्वती को जब पूछा गया कि आपने शंकर को क्यों पसंद किया? महादेव अवगुण-भवन है। पार्वती ने कहा, इसीलिए तो मैंने पसंद किया है! क्योंकि हमारी बनती है। किस रूप में? तो बोली, उनमें आठ अवगुण, मुझ में नव अवगुण। कुंडली मिल गई! ब्याह हो गया!

अगुन अमान मातु पितु हीना ।

उदासीन सब संसय छीना ।।

एक-एक अवगुण की चर्चा 'मानस' में आई। वहां मयना रोने लगी! पार्वती भी रो रही है, जैसे-जैसे नारद ने महादेव का अवगुण वर्णन किया! दोनों रोयी लेकिन दोनों का अर्थघटन भिन्न है। क्योंकि मयना केवल बुद्धि से सोचती है, सुनती है; हृदय में प्रयोग नहीं करती है।

पार्वती हृदय से, श्रद्धा से प्रयोग करती है कि ये एक-एक अवगुण मेरे लिए मूल्यवान है। इसे तो ब्याहना ही चाहिए। एक भी गुण न हो ऐसे लड़के को कौन बेटी ब्याहेगा? पार्वती ने हृदय से प्रयोग किया कि अगुण तो फायदेवाली बात है। क्योंकि गुण तो बदलते रहते हैं, मात्रा वध-घट होती रहती है। इस आदमी में गुण ही नहीं है और मैं ज्यादा प्रेम करूंगी क्योंकि प्रेम गुणरहित होता है। बुद्धि कुछ सोचती है, हृदय का प्रयोग कुछ सोचता है। 'मयना, आपकी बेटी को ऐसा पति मिलेगा जिसका कोई गुण नहीं, कोई स्वाभिमान नहीं।' कौन बेटी देगा? पार्वती ने अच्छा अर्थ निकाला। पार्वती ने सोचा, इस आदमी से तो ब्याह करना ही चाहिए, उनमें अभिमान नहीं है। अभिमान के कारण संसार बिगड़ता है। पुरुष का और स्त्री का अहंकार टकराता है। ये अहंकार की टक्कर से संसार बिगड़ेगा! ये अभिमानवाली टक्कर न होने से हमारा संसार सुखमय रहेगा। घर में कोई माँ-बाप नहीं, वडील नहीं। पर पार्वती ने सोचा, मैं जीव से नहीं, मैं शिव से शादी करने जा रही हूं। ये अजन्मा है। उदासीन; चौथा अवगुण महादेव का, तुम्हारी बेटी जिसे ब्याहेगी वो उदासीन होगा। माँ-बाप को लगा, चुप-चुप बैठा रहे, कुछ बोले नहीं, इसे कौन कन्या देगा? पार्वती को लगा, मेरे लिए तो फायदे की बात है। कितनी तपस्या के बाद आदमी उदासीनता में प्रवेश कर पाता है! उदासीन माने उदास नहीं। ऐसे आसन पर बैठना जहां से साक्षीभाव प्रगट होता है, जहां से दृष्टाभाव प्रगट होता है। कर्ताभाव के कारण युद्ध होते हैं। पार्वती ने हृदय के प्रयोग से अर्थ निकाला, माता-पिता ने बुद्धि से अर्थ निकाला। माता-पिता को हुआ, कोई प्रश्न नहीं, कोई संशय नहीं, ये संसार में कैसे रहेगा? पार्वतीजी ने सोचा कि पुरुष के मन में संदेह स्वाभाविक है, स्त्री के मन में संदेह भी स्वाभाविक है। जो मुझे मिलनेवाला है वो समस्त संशय से मुक्त है, उसका मतलब है, विश्वास का घनीभूत स्वरूप है। जहां विश्वास ही विश्वास है, वहां तो भक्ति होगी। जहां भक्ति है वहां प्रेम होगा तो मेरा जीवन तो प्रेम से भर जायेगा। जोगी; आगे का अवगुण महादेव का। तो, मा-बाप रो पड़े कि योगी होगा वो भोग में नहीं जायेगा तो उसका परिवार भी नहीं बढेगा। मेरी बेटी दुःखी-दुःखी हो जाएगी! ब्याह तो भोग का साधन है।

मैं ये ही सूत्र पर बोल पड़ा कि परमतत्त्व होता है वो परम भोगी भी होता है और परम योगी भी होता है। ये परमतत्त्व इन दोनों का स्वीकार करके पूर्णता को प्राप्त करता है। परमतत्त्व का ये स्वाभाविक लक्षण समझ लेना। ये नियम है, वर्ना परमतत्त्व अधूरा है। देखिये, हम जिस भोगों के आदती है, वो भोग नहीं। वहां परम का भोग है, शाश्वती का भोग है। कितनी छोटी-छोटी बातों में हम सुख महसूस करते हैं! हमारे छोटे-छोटे क्षुल्लक सुख है! साधुपुरुष के सत्संग समान कोई सुख नहीं!

तो, योगी के साथ बेटी के ब्याह कैसे करे? पार्वती ने सोचा कि परमयोगी के साथ ही जीवन का सारल्य है और साफल्य है। केवल भोग का कीड़ा हो उसके साथ जीवन गटर का पानी है! योगी के साथ जीवन गंगा का प्रवाह है। पार्वती ने हृदय की प्रयोगशाला में अर्थ बदला। 'जोगी जटिल', जटाजूट होगा। शंकर भगवान ब्याहने गये तब भी जटामुगुट बनाकर गये। अकाम; जिसका मन निष्काम होगा उसके साथ बेटी की शादी? पार्वती ने सोचा कि निष्काम है इसका मतलब है कि भजनानंदी होगा। तो मेरा पति विषयानंदी नहीं होगा, भजनानंदी होगा। और भजन के घर में मैं जाउंगी। मैं कितनी सौभाग्यशाली हूं!

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेस ।

नारद ने कहा, उसको जो पति मिलेगा वो नग्न होगा। कौन बेटी देगा? जिसको पहनने का कपड़ा न हो उसे कौन कन्या देगा? लेकिन पार्वती ने बहुत अच्छा निर्णय किया कि नग्न रहेता होगा इसका मतलब परम उदार होगा कि कपडें तक दूसरों को दे देता, ले जाओ, ले जाओ, ले जाओ! ईशान का देव, जिसने वासना का कोई

वस्त्र पहना नहीं। समस्त वासना जिसकी भस्मीभूत हो चुकी है। तो, पार्वती प्रसन्न हुई कि मुझ में आठ अवगुण, महादेव में नव अवगुण। इसके साथ हमारी जोड़ी जमेगी!

विचार में रहना चाहिए। सुनो, सुनो, सुनो; कहां रहना चाहिए? विचार में। लेकिन सम्यक् विचार। अधिक विचार नहीं और कम भी नहीं। तो एक, विचार में रहो। विचार में रहो, साथसाथ विनोद में रहो। क्योंकि अकेले विचार में तो आप गंभीर हो जाओगे! थोड़ा विनोद, थोड़ा रिलेक्स, थोड़ा आनंद में रहना चाहिए। क्योंकि केवल विचार में रहनेवाले तो गंभीर हो जाते हैं! धर्मजगत में तो लोग विनोद में जीते ही नहीं! विचार, विचार! और चिंतक लोग तो अतिशय गंभीर रहते हैं! उसकी बत्तीसी खुले ही ना! ये तो डोक्टर बूढ़ापे में खुलवाता है! तीसरा सूत्र है, विश्वास में रहे। भारत का एक संन्यासी कहता था, विश्वास जीवन है, संशय मौत। नाम था नरेन्द्र पूर्वाश्रम का फिर विवेकानंद हुए। मैं कल जागूंगा ये विश्वास होना चाहिए। मेरे शब्दकोश का बहुत प्यारा शब्द है 'विश्वास।' लोग कहते हैं, कब तक विश्वास करे? अरे! छोड़ो, जनम-जनम विश्वास करे। विश्वास में रहना। ये चौथा प्लोट, जिसे रास आये, ले ले; मूल्य कोई नहीं! वैराग में जीना; हे हरि, मुझे वैराग दो। और ऐसा वैराग दो कि दुनिया को पता भी न लगे कि वो मुझसे बिलग हो चुका है! ऐसा रसभरा वैराग। और पांचवां, कथा सुनते-सुनते प्राप्त विवेक में रहना। बस, ये पांच प्लोट में रहना।

तो बाप, पहले बंध में 'रुद्राष्टक' में गुरु के जो स्वाभाविक लक्षण है वो है। निर्वाण रूप और ब्रह्मस्वरूप। रूप बहिर् और स्वरूप भीतर। रूप का अर्थघटन बुद्धि से होता है। स्वरूप का बोध ऐसे विशेष हृदय की आंखों से हुए दर्शन से होता है। थोड़ा आगे बढें।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं ।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।।
करालं महाकाल कालं कृपालं ।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ।।

'रुद्राष्टक' के माध्यम से विशेष दर्शन गुरु का। निराकार; गुरु का कोई आकार नहीं है। आकार केवल दैहिक होता है। ठीक है, हम गुरु की मूर्ति रखें; अपनी निष्ठा का प्रश्न है। गुरु का चित्र रखें, अच्छी बात है। क्योंकि हमें कुछ चाहिए, लेकिन तब तक द्वैत बना रहता है। यद्यपि ये भी सूत्र है कि गुरु और शिष्य मैं द्वैत होना चाहिए। गुरु परंपरा में ये मेरा गुरु, मैं उनका शिष्य, ये द्वैत माना गया है। शंकराचार्य की बात ओर है। हमें तो चाहिए आकार। लेकिन तत्त्वत: ये भी समझ तो बनी रहनी चाहिए कि गुरुतत्त्व निराकार है। हमारे लिए वो आकार ले ये करुणा है। और ये कोई संसार के माया और जनम-जनम के कर्मफल के कारण नहीं होता उसका आकार। ये निज इच्छा से होता है। वो चाहे कि मुझे प्रगट होना है, प्रगट हो जाये। तो मूल में तत्त्वत: गुरु निराकार है। हम जैसों के लिए आकार चाहिए ये बात बिलग है। ये मूर्ति हमने अपनी श्रद्धा समर्पित करने के लिए बनाई है कि शिव-पार्वती बैठे हैं। शब्दो में, कविता में, कथानकों में, प्रसंगों में भी हमने मूर्ति घड़ी है। तत्त्वत: उसका कोई आकार नहीं है। फिर भी पूर्व की सभ्यता ने उसको शिवलिंग के रूप में प्रस्तुत किया है। न मुख, न कान, न नाक, न हाथ, न पैर। कोई कर्मेन्द्रियां नहीं। कुछ नहीं। बस, शिवलिंग के रूप में। ये निराकार का प्रतीक है। फिर भी तुलसीदासजी के मत के अनुसार वानराकार; जो निराकार है वो वानर के आकार में आया हम जैसों के लिए।

मेरी तलगाजरडी आंखों से 'रामचरित मानस' में शंकर के निराकार से जो हनुमान के रूप में आकार धारण किया उसके पंद्रह रूप है। इनमें सबसे पहला फोर्म है, 'वानराकार विग्रह पुरारी।' वानराकार इसी हनुमान ने पंद्रह रूप लिये हैं। एक तो पहला रूप वानराकार। कलियुग में यदि हनुमानजी के पास रहना है, आश्रित रहना है तो हनुमानजी की भीषण मूर्तिओं का प्रयोग मत करो। शताब्दीओं से हनुमानजी की मूर्ति बस गदा लिये हैं, वीरासन में खड़े हैं! उसको बैठने दो, शांति से बैठने दो। वर्ना मंदिरों में जो मूर्ति होती है वहां एक गदा और पहाड़! अब उसको शांति लेने दो। खबर नहीं, अपना है तो अपनेपन में रागात्मिका बुद्धि भी हो जाती है इसलिए मुझे तो ये रूप बड़ा प्यारा लगता है। खबर नहीं, आपको कैसा लगता हो! मेरा हनुमान अलग है, बहुत प्यारा है। देखो, कैसे बेठा है? अच्छा लगता है। शांत बैठा है। ध्यान करना है तो भी ये रूप आराम देगा। योगा करना है तो उसके सामने बैठ जाओ। 'मानस' का पाठ करना है; विद्या अर्जित करनी हो तो उसके सामने बैठकर विद्या प्राप्त करने लगो। बल, बुद्धि, विद्या देने वाला है ये। एक वानर का रूप। दूसरा रूप है-

बिप्र रुप धरी कपि तह गयउ।

तो इस पंक्ति के अनुसार 'मानस' में हनुमानजी ने विप्र आकार लिया है। हनुमानजी के पंद्रह रूप है ये पंद्रह के पंद्रह गुरु के रूप है। इसमें सबसे पहले गुरु का रूप है

वानर। आपको तकलीफ़ हो जाएगी पर वानरवेडा करे ये गुरु की बात नहीं! ऐसे बुद्धता में बैठ गया हो, ऐसे जिसने विचार देकर ये कह दिया हो कि मेरे हाथ से गदा ले ले, सितार दे दे। ये गुरु की मैं बात करता हूं। मुझको मुक्त कर गदा से अब! मुझे कोई वाद्य पकड़वा दे। वानरवेडा करे वो गुरु नहीं। बुद्धता के रंग से रंगा हुआ स्वर्णिम गुरु; गोल्डन गुरु। मैं आपके सामने धीरे-धीरे डिस्क्राईब करूंगा। मेरा प्रवाह चला, मेरा गुरु मुझे धक्का देगा। क्योंकि सप्त सूर है वहां त्रिभोवनदादा उंगली लगाता है कि मुझे किस सूर लेना है? मैं परवश हूं! पूर्णरूप में परवश हूं।

कभी-कभी दादा के मुख से 'गुरुदेव समर्थ' निकलता था। बाकी बेरखा चलता रहता था। बहुत कम बोले। मुझे लगता है कि मेरे पास जो कम बोले उसमें सब बोल दिया था। ये शब्द बहुत पुराना है। ये तलगाजरडा का ही शब्द नहीं है। महाराष्ट्र में समर्थ रामदास भी गुरु को समर्थ कहकर पुकारते हैं। लेकिन मेरे मन में ये शब्दब्रह्म आया वो तलगाजरडा से आया। तो मैं कभी-कभी 'गुरुदेव समर्थ' बोलता हूं। मेरा व्यक्तिगत मानना है कि मेरा सब कुछ गुरु है। मेरे लिए वो गुरु ही सर्वस्व है। मेरे लिए तो गुरु ही साध्य है। गुरु फर्नीचर नहीं है कि तुम यहां से खुरशी लेकर इधर रख दो! गुरु परमात्मा है। मेरा बिलकुल अंगत विचार हैं। आपको मेरे पीछे अंधी दौट करने की जरूरत नहीं। एक शे'र मैं लाया था, रह गया किसी संदर्भ में!

तू इस कदर मुझे अपने करीब लगता है।
तुझे अलग से जो सोचूं तो अजीब लगता है।

ये शे'र सुनके द्वैतभाव मिट जाएगा। तू मेरा सर्वस्व है।

हम चर्चा कर रहे थे पंद्रह रूप जो हनुमानजी के है ये गुरु के स्वाभाविक लक्षण है। एक, निराकार। दूसरा, वानराकार; तो गुरु का एक स्वाभाविक लक्षण है वानर। वानरवेडा नहीं! चांचल्य नहीं, स्थैर्य, बुद्धता। न पहाड़ का गुरु पर बोज है, न गुरु के हाथ में गदा का बोज है। ऐसा गुरु वानर जैसा जो निर्भार है। इक्कीसवीं सदी में गुरु ऐसा होना चाहिए कि जो हमें कहे, मेरे हाथ से गदा भी ले लो, सितार पकड़वा दो! तो वानररूप गुरु का रूप है। विप्ररूप है हनुमानजी का 'हनुमानचालीसा' में-

सूक्ष्म रूप धरी सीय ही दिखावा ।
बिप्र रूप धरी लंक जलावा ।।

तो वानररूप, विप्ररूप, सूक्ष्म रूप, विकट रूप, भीमरूप। अति लघु रूप धरे। विशाल रूप, भिन्न-भिन्न रूप में गुरु पेश हो रहा हैं। विशेष दर्शन गुरु का हम कर रहे हैं। हनुमानजी का एक रूप है दूतरूप।

राम दूत मैं मातु जानकी ।
सत्य सपथ करुणानिधान की ।।

हनुमानजी का एक रूप है सेवकरूप।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

हनुमानजी का माँ जानकी के सामने पुत्ररूप है। सेवकरूप, सखारूप। श्री हनुमानजी का एक रूप है देवीरूप। पाताल में गये तो देवीरूप। सखारूप; देवरूप; लंकावासीओं का एक निवेदन आया है; और मसक समान रूप; हनुमानजी का महावीर रूप, विकट रूप, भीमरूप। बहुत प्रिय हनुमानजी का रूप है मौन रूप। तो मैं कल उसकी चर्चा करूंगा।

कभी-कभी मैं महसूस करता हूं कि ये 'रुद्राष्टक' दशों दिशा में कोई गा रहा है। कोई उत्तर में, कोई दक्षिण में, कोई पूरब में, कोई पश्चिम में। इन नाद से ये पूरा ब्रह्मांड गुंज रहा है। मेरे निज अनुभव में ऐसा कोई अष्टक नहीं, जो दशों दिशायें गाती हो। शायद इसीलिए पूज्यपाद गोस्वामीजी तुलसी ने ये भुजंगप्रयात में उतारा इसको। इसके प्रत्येक चरण के दस-दस अक्षर होते हैं। ये जो इसका बंधारण है। इसका एक संकेत है। ये दशों दिशा में कोई गा रहा है। काश, हमारे कान सुन पाये! 'रुद्राष्टक' अपने-अपने निज बुद्धपुरुष की स्तुति है।

गुरुतत्त्व निराकार है लेकिन हमारा भाव उसको आकारित करता है

बाप! हरिहर तीर्थ इस मोक्षपुरी में जहां माँ कामाक्षा विराजित है और जगद्गुरु आदि शंकराचार्य की गंगा जैसी प्रवाही परंपरा जहां अखंड प्रवाहित है और इस भूमि में रामकथा के लिए भगवान परमाचार्य का आशीर्वाद तो समाहित है ही। पूजनीय महाराजश्री उपस्थित नहीं है उनका सद्भाव और आशीर्वाद हमारे साथ है। वर्तमान पीठाधीश पर है वो तो बहुत प्रसन्न है। सभी के चरणों में मेरा प्रणाम। कल संध्या के समय भगवान महादेव के लिए इस पवित्र स्थान में संगीत द्वारा एक अभिषेक हुआ, सितारवादन हुआ। बड़ा सात्त्विक रूप से पूरा अभिषेक रहा। आप सब जानते हैं कि प्रत्येक कथा का सारांश तीन भाषा में गुजराती, हिन्दी, इंग्लीश में संपादित होता है और हमारे स्नेही नीतिनभाई बहुत विवेक के साथ संपादन करते हैं। उसकी पूरी टीम व्यासपीठ के प्रति आश्रित भाव से काम करती हैं। और 'मानस-मंगलभवन' जो कच्छ में गाई गई थी, उसका लोकार्पण यहां हुआ। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं और अपना सद्भाव व्यक्त करता हूं। बहुत अच्छा काम हो रहा है। व्यासपीठ और चित्रकूटधाम से हो रहा है इसलिए अच्छा कहूं ऐसा कोई स्वभाव नहीं है लेकिन मुझे लगता है ये काम अच्छा हो रहा है। क्योंकि मैं अपनी कथा देख नहीं पाता। कौन कथा में क्या बोल गया, खबर नहीं! बोल गया, बोल गया! कई लोग मुझे पूछते हैं, बापू! कभी आपकी कथा सुने लेकिन समय कहां। मैं नीतिनभाई को अकसर कहता रहता हूं, उन्हें अच्छा भी न लगे कि आप ये संपादन करके दे देते हैं, सबको बांटते हैं प्रसाद के रूप में और मुझे देते हैं तो मैं अपनी यात्रा में साथ रखता हूं। जब मैं पढ़ता हूं तो मुझको भी आश्चर्य होता है कि दादाजी ने ऐसा बुलवा दिया! तो मुझे भी बहुत बल मिलता है। वर्ना तो चला जाता है! बोल दिया, बोल दिया! तो ये मेरी दृष्टि में एक प्रसन्न कार्य हो रहा है। मैं पुनः एक बार मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। आईये, कथा के विषय में प्रवेश करें।

'मानस-रुद्राष्टक', जिसमें वेदकथा में भगवान शिव की ये स्तुति जो परम साधु ने गाई है, उस स्तुति के लोगों को देखते हुए बुद्धपुरुष के, सद्गुरु के स्वाभाविक लक्षणों पर कथा की विशेष दृष्टि रही है। कल से दूसरा बंध जो हमने शुरू किया उसकी चर्चा का क्रम चल रहा हैं-

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

भगवान महादेव, त्रिभुवन गुरु, परमगुरु निराकार है। इस पर से हम चर्चा करने चले कि परमतत्त्व अगर निराकार है तो भी 'निज इच्छा निर्मित तनु', यद्यपि कोई भी इच्छा नहीं है उसे। वो निरीह है, कोई इच्छा नहीं है। जिसको कभी कोई इच्छा नहीं होती है उसको इच्छा करने की छुट होती है। जो बार-बार इच्छा करते हैं उसको कोई इच्छा करने की छुट नहीं होनी चाहिए। लेकिन जो कभी इच्छा न करे, उसको निज इच्छा से कुछ करने का स्वातंत्र्य है। इसलिए कल मैंने संकेत किया कि परमात्मा निराकार है। फिर भी 'निज इच्छा

निर्मित तनु', ये अपनी इच्छा से स्वतंत्र निर्णय कर सकता है। वो चाहे तो मछली का आकार ले सकता है। वराह के रूप में आता है। वामन के रूप में, राम-कृष्ण, बुद्ध के रूप में आता है। वैसे ही गुरुपरक दर्शन है तब गुरुतत्त्व तत्त्वत: निराकार है। भाव से हम उसमें आकार निर्मित करते हैं। मैं कहता रहता हूं कि आप कल्पना करे, कल्पना अच्छी है। हम वहां बैठे और ऐसी कल्पना करे कि हम कालिन्दी के तट पर बैठे हैं और यमुनाष्टक का गान कर रहे हैं। मयूर नाच रहे हैं। मंद सुगंधी शीतल वायु बह रही है। कल्पना अच्छी है। अच्छा लगता है। लेकिन कल्पना है। राजस्थान की खदानों से निकला हुआ शुभ्र संगेमरमरी पत्थर है बहुत अच्छा। चांदनी को भी शरमा दे इतना इसका उजाला है। लेकिन जब तक हमारी कल्पना रहती है तब तक है ये पत्थर। लेकिन ये कल्पना के बाद जब साधक में भाव जगने लगता है; भाव से मूर्ति निर्मित होती है। भाव आकार देता है। गुरुतत्त्व निराकार है लेकिन हमारा भाव उसको आकारित करता है। लेकिन भाव द्वारा मूर्ति बन गई। बिकती है, विष्णु की मूर्ति दस हजार की और कहते हैं कि ये नव हजार में ले जाओ। है देव, लेकिन भाव होता है वहां! चलो, हमने ले ली। कल्पना की। भाव हुआ। आकार बन गया। घर में छोटा-सा मंदिर बनाया और हमने वहां प्रतिष्ठित की। तब गुरु उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर देता है। फिर उसका नीलांजन, पूजन, धूप-दीप होता है। तो भाव आकार देता है। तत्त्वत: निराकार है।

तो, हमारे यहां निराकार रूप जो शिव है उसने जो आकार लिया वानराकार। मैंने कल भी कहा कि यद्यपि शिव की कोई मूर्ति नहीं लेकिन मैं भगवान शंकराचार्य के दर्शन करने गया तो वो सब बता रहे थे। उन्होंने बताया कि यहां भगवान शंकर शयन करते हैं। उसका एक विचार तो बिलकुल मेरे विचार से मेल बैठ गया कि नये मंदिर नहीं होने चाहिए। जो हो उसका निर्माण, पुनरोद्धार ही होना चाहिए। मुझे बहुत अच्छा लगा। जहां-तहां मंदिर-मंदिर! हां, हर गाव में एक मंदिर होना ही चाहिए। लेकिन ज्यादा मंदिरों की जरूरत नहीं। पुराना हो गया हो तो पुनरोद्धार करो। फिर मंदिरों में स्पर्धा हो, ऐसा बनाये, ऐसा बनाये! सबको रेकर्ड तोड़ना है! खैर, ये विचार मुझे प्रिय लगा। तो बहुत विशाल दृष्टि से आप भविष्य की जनता के लिए सोच रहे हैं। बहुत स्वागत योग्य है। मुझे एक बात शंकराचार्य भगवान ने बहुत अच्छी बताई कि हम शंकराचार्य अंदर से शाक्त है। ये बिलकुल सत्य है। मैं भी जानता हूं, आचार्यों की पूरी जो उपासना है वो शाक्त है। ये शक्ति उपासक है। त्रिपुरसुंदर, श्रीयंत्र इसी में ये लगे रहते हैं। यहां तो खुद शंकराचार्य ने शालीग्राम पर श्रीयंत्र बनाया है। और उसकी पूजा होती है। मैंने दर्शन किया। जगद्गुरु भगवान अच्छा बता रहे थे, हम अंदर से शाक्त है, उपर से शैव है, व्यवहार में वैष्णव है। बहुत अच्छी बात कही। आचार्य ऐसा होना चाहिए। अच्छी प्रस्थानत्रयी मानी जाये। तो ये विचार बहुत आनंद दे गया। कितना समन्वय हो जाये, कितनी एकता आ जाये इन सूत्रों से! आपने एक दूसरी बात ये भी कही कि उत्तर की बुद्धि और दक्षिण की सिद्धि इकठ्ठी हो जाये तो देश का उद्धार हो जाएगा। अच्छी बात है। युवान भाई-बहनों, ये इक्कीसवीं सदी के सूत्र हैं। अच्छा है। सबसे बड़ा आनंद तो मुझे ये आया कि आचार्य की समाधि है, ये समाधि के बिलकुल उपर काले पथ्थर का आकार है उसमें तुलसी का पौधा है। शंकराचार्य की समाधि के उपर तुलसी का पौधा! बात छोटी-सी है; मेसेज बड़ा है।

तत्त्वत: बुद्धपुरुष निराकार है लेकिन करुणावश हम जैसों के लिए कई अवतार लेते हैं। लेकिन वो निरीह है। रामकथा के माध्यम से हम शंकर का रूप देख रहे हैं। निराकार साकार हुआ वो वानराकार है। तो हनुमानजी के कुछ रूप हैं वो बुद्धपुरुष के रूप हैं। एक, वानर; गुरु वानर है। तथाकथित धर्मावलंबीओं को ठेस हो सकती हैं! गुरु दत्तात्रेय ने नर्तकी पिंगला को गुरु बनाई थी, गुरुओं की कथा जब आई। 'रुद्राष्टक'वाला निराकार रूप साकार होता है। गुरु के रूप में एक रूप वानर है। गुरु वानर होना चाहिए, गुरु में वानरवेडा नहीं होना चाहिए।

गांधीजीवालें तीन बंदरों को याद करो। ये गुरु का लक्षण है। गुरु कौन है? बुरा न सुने किसी का भी। गुरु कौन है? बुरा न देखे किसी का भी। गुरु कौन है? बुरा न बोले किसी का भी।

तो, वानर का रूप है गुरु। इनमें से कुछ दो-तीन बातें समझें। अब वानर गुरु हनुमान को तलगाजरडा ने गदा छुड़वा दी और सितार पकड़वा दी। इक्कीवीसवीं सदी का गोल्डन गुरु हनुमान हथियारधारी नहीं होना चाहिए। शास्त्रधारी हो, शस्त्र न हो। शस्त्र रखे देवता लोग, गुरु नहीं। सत्य की उपासना की गांधीबापू ने। कोई शस्त्र नहीं, एक लकड़ी थी। ये लाठी किसी पे प्रहार करने के लिए नहीं थी। शस्त्र नहीं गुरु के पास। यद्यपि हिन्दु धर्म पर खतरा हुआ ऐसी परिस्थिति आई तब हमारी शीख परंपरा में शस्त्र की बात आई। समय-समय पर जो हुआ लेकिन अब इक्कवीसवीं सदी में गुरु शास्त्रधारी हो। और गलत व्याख्या करके शास्त्र को भी शस्त्र न बना देता हो! कई धर्मग्रंथों के अलग अर्थघटन के कारण दुनियाभर में भय का साम्राज्य है! आतंक फैला हुआ है! हनुमानजी से गदा ले ली गई और सितार पकड़वा दिया इसका मतलब वानर गुरु सूर, ताल, लयवाला होना चाहिए। गुरूमूर्ति संगीतमयी हो। रामजी के हाथ में से हमने हथियार छुड़वा दिये वो चर्चा तो बहुत चली! पंडित लोगों जो खुद दुनिया में अहिंसा की बातें करते थे, मेरी बात की आलोचना करते हैं! ऐसे विचारवान लोग कहते हैं, हथियार ले लिये, बापू ने ठीक नहीं किया! आप अहिंसा की बातें करते हैं! मैंने मेरे राम से शुरूआत की तो थोड़ा राजी तो हो! हां, हनुमानजी को सितार पकड़वा दी, उसकी चर्चा कम हुई! गुरु संगीतमय होना चाहिए। गुरुनानक कहते थे, मर्दाना छेड़।

मेरे पास बहुत समय पहले एक धनी आदमी कच्छ के थे, मुंबई से आये थे; अब नहीं रहे। मैं उनके घर ठहरता था। वो मुझे बार-बार कहते थे कि हनुमानजी की पूंछ निकलवा दो। हनुमानजी मनुष्य है। आपकी बात कोई नहीं टालेगा। आप कथा में कहो तो हो जाएगा। मैंने कहा, दादा, मैं ये नहीं कर सकता। मुझे तो पूंछवाला हनुमान रास आ गया है! पूंछ के बिना हनुमान मुझे नापूंछक लगे! क्योंकि मेरे मन में एक गुरु का रूप है। गुरु वो है जिनके पास बहुत लंबी प्रतिष्ठा है। लेकिन वो अपनी प्रतिष्ठा को आगे नहीं करता, पीछे रखता है। इसलिए हनुमानजी की पूंछ पीछे है। गुरु की प्रतिष्ठा कोई कम होती है? पूंछवाला हनुमान पशु नहीं है। दैवी प्रतिष्ठा का धनी है। ये पूंछ प्रतिष्ठा का प्रतीक है। गुरु की प्रतिष्ठा न चाहते हुए भी पीछे-पीछे लगी है। जाये भी कहां? कहीं भी जाओ, प्रतिष्ठा तुम्हें छोड़ेगी नहीं! गुरु ऐसा हो कि उन्हें प्रतिष्ठा की पड़ी न हो लेकिन उसकी बड़ी लम्बी प्रतिष्ठा हो।

दूसरी बात, हनुमान गुरु वानराकार है और उसको मूछ नहीं है। हां, कई लोग मूछवाला हनुमानजी बनाते हैं! मैं ना कहूं तो खास बनाते हैं! लेकिन हनुमानजी को मूछ नहीं है इसका मतलब है मुख तो है, मूछ नहीं है। मुख आगे, पूंछ पीछे। इसका मतलब है, जगत से मिली हुई प्रतिष्ठा को देखे ना। मुख आगे रखे। मुख में क्या रखे? तंबाकु? मुख में क्या रखे? गांजा का बीज? मुख में क्या रखे? नशीली चीज? मुख में क्या रखे? विक्स की गोली? हनुमानजी मुख में क्या रखते हैं?

प्रभु मुद्रिका मेली मुख मांही।
जलधि लांधी गये अचरज नाही।।

हनुमानजी के मुख में रामनाम लिखी मुद्रिका है। मुख में महामंत्र है। प्रतिष्ठा को आगे नहीं रखी, भजन को आगे रखा। मेरा एक पुराना निवेदन है कि भजन के भोग पर कोई प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। मैं आपसे प्रार्थना करूं कि चौबीस घंटों में एक घंटा ही आप पाठ-पारायण जप, वेद-पारायण जप, जो-जो करो लेकिन एक बार आप सहजता से निश्चित करे कि आधा घंटा इतना भजन करना है। फिर इस भजन के भोग से कुछ भी मत करना। पांच मिनट निश्चित करो कि प्रार्थना करनी है। प्रार्थना के बाद कोलेज जाना है, पांच मिनट ही करो। लेकिन इसके भोग पर कोई दूसरा काम कितना ही महत्त्व का आ जाये, न लो। पांच नहीं तो तीन मिनट ही।

श्री हनुमानजी गुरु है, वानराकार है। और उसको हमने स्वर्णदेह कहा है। सोने का है इसका मतलब स्वर्णिम गुरु होना चाहिए। जिसे जगत का जंग न लगे। ऐसा विग्रह गुरु का विग्रह है। गुरु वो है जब समाज को जरूरत पड़े कि समाज भूखा-प्यासा है, इनकी अपेक्षायें पूरी नहीं हो रही है, कितनी समस्यायें आ पड़ी है, मौत की नौबत आ रही है, ऐसे समय में हनुमानरूपी गुरु सदैव अगवानी करता है। आओ मेरे पीछे, मृत्यु का मामला है तो मैं आगे रहूंगा। गुरु आगे चलेगा। हनुमानजी ने ये किया। बंदर, भालुओं ने जानकी की खौज में इतना समय बिताया। तृषातुर हुए, खाना नहीं मिला तब हनुमानजी आगे आये। बाकी सतत हनुमानजी पीछे रहे। गुरु वो है जो सबसे पीछे रहे। गुरु को आगे-पीछे का कोई पक्षपात नहीं होता।

हनुमानजी का पंद्रह रूप जो है, निराकार शिव का हनुमान के रूप में पंद्रह जो रूप दिखाई दिया वो गुरु के स्वाभाविक लक्षण है। एक, वानराकार। दूसरा, विप्ररूप। गुरु विप्र होता ही है।

विप्र रूप धरी कपि तहुं गयउं।

केवल वर्ण का विप्र गुरु होगा ही ये नियम नहीं है। जो गुरु होगा वो तो विप्र होगा ही। स्वाभाविक है। विप्र यानी विवेक की प्रधानता; विराग की प्रधानता; विगत; प्रपंच से विगत है वो है विप्र। ये तीन बात मैं विप्र के बारे में बहुत समय से कहता हूं। मेरे गोस्वामीजी ने ये पंक्ति लिखी ऐसा विप्र जो विवेकप्रधान प्रपंच से मुक्त है। ऐसा विप्र कभी हमको सुधारने के लिए ऐसा कहे फिर भी हम न माने तो जोर से हाथ खींचे और कहे कि क्यों नहीं मानता? गुरु विप्र होता है। यज्ञोपवित धारण करने से विप्र कहा जाये ये ठीक है, लेकिन जगद्गुरु जो होते हैं उनको कंधों पर जनोई नहीं होती है। वो शिखा नहीं रखते हैं। मुंडन रखेंगे या तो पंचकेश रखेंगे। वानररूप, विप्ररूप और तीसरा-

सूक्ष्म रूप धरी सीयही दीखावा।
बिकट रूप धरी लंक जलावा।।

तीसरा रूप निराकार शिव जब वानर बना तब सूक्ष्म रूप। गुरुपरक अर्थ क्या है? दो-तीन अर्थ समझना पड़ेगा। सूक्ष्म रूप का अर्थ, गुरु बहुत सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ प्रदान कर देता है। दीर्घ नहीं, लंबा-चौड़ा नहीं; बोझ बन जाये ऐसे सूत्र नहीं, सूक्ष्म। और भगवान की मूर्ति करुणामयी है ऐसा 'विनयपत्रिका' में कहा है। गुरु की मूर्ति प्रेममयी है। हाड-मांस तो देह की एक व्यवस्था है। लेकिन उनके अंग-अंग में प्यार है। और प्रेम नारद की बोली में सूक्ष्मतरम् है। नारद ने जो प्रेम के छः लक्षण बतायें। गुणरहितं, कामनारहितं, अविच्छिन्नं आदि-आदि। प्रेम का रूप अत्यंत सूक्ष्म है। इसलिए हनुमानजी सूक्ष्मरूप लेते हैं। इसका मतलब उनका प्रेमरूप है। प्रेम स्थूल नहीं होता, बहुत सूक्ष्म होता है। आवेश स्थूल, आक्रमक होता है। प्रेम सूक्ष्म रूप होता है। गुरु का सूक्ष्म रूप जो है वो प्रेम है लेकिन कलिप्रभाव है बाप! और इनमें भी मैं कहूं तो भाईओं से ज्यादा बहनों को विवेक रखने की जरूरत है। क्योंकि बहनों का हृदय ज्यादा लागणीशील होता है। व्यासपीठ तो आपको छलेगी नहीं लेकिन ऐसे स्थान कई होते हैं, कहीं छले जाओगे! सावधान रहो। सत्संग को गुणातीत रखो। आंख बहुत कुछ कह देती है। बारिश होती है तो हम टूटा-फूटा छाता भी ले लेते हैं। कलिप्रभाव बहुत है। मेरे श्रोताओं से मेरी प्रार्थना है कि विवेक का छाता रखो। क्योंकि बुद्धि बिगड़ती जा रही है कलिप्रभाव से! गुरु जब प्रेममय अवस्था में होता है तब सूक्ष्म रूप होता है। आवेग नहीं होता। आपकी ऊंचाई पांच फिट है लेकिन आपके बच्चें कहीं विदेश में है वो याद आ गये, या गुरु याद आ गये, माँ याद आ गई, आप संगदिल है लेकिन चुपचाप बैठ जाते हैं घर में, तब आप सिकुड़कर बैठते हैं।

मुझे तलगाजरडा याद आ रहा है। दादा की बैठने की रीत मैं दिखाता हूं। एक हाथ में निरंतर बेरखा, एक हाथ निष्क्रिय। कभी-कभी मैंने देखा, शायद सुमिरन के कारण, भावदशा के कारण जब ओर सिकुड़ जाते थे। उस समय करीब-करीब मेरी तो क्या, जो भी देख लेते

थे, सबकी दशा बहुत बिगड़ जाती थी! जब वो पैर सिकुड़के माथा डाल देते थे आधा-एक घंटा तब हमारे घर की दीवारें रोती थी! ये है सूक्ष्मरूप। प्रेम स्थूल नहीं है, प्रेम सूक्ष्मतरम् बना देता है। हनुमानजी का जो सूक्ष्म रूप है। मेरी भी ये आदत है। आप नहीं देख पाये। मैं देखने भी न दूं। लेकिन जब अकेला बैठता हूं तब कोई कोने में ऐसे बेठता हूं। चूक से भी कोई देख लेता है, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है! क्योंकि ये प्रेम का लक्षण है। हनुमानजी का विशेष रूप से दर्शन कर रहे हैं 'रुद्राष्टक' के माध्यम से। और एक रूप है-

अति लघुरूप पवनसूत लीन्हा।

लघु रूप का क्या नाप करे? लघु रूप माने अत्यंत सादगी। लघु रूप माने अत्यंत सरलता। लघु रूप माने अत्यंत चेष्टामुक्त स्थिति। गुरुओं को परखना। बुद्धपुरुष में अत्यंत सादगी होती है। एकाद कंठी भी उसके गले में होती है वो भी उसे बाधा बनती है। बिलकुल सादगी बुद्धपुरुष का लक्षण है। सरलता और सादगी ऐसी कि रमेश पारेख को याद करूं-

आज कोईने फळिये, काले कोई अरण्ये जडे।
पडे न स्हेजे खुदनो डाघो एम जगतने अडे।
दुर्लभ ए दरवेश के जेनां काळ साचवे पगलां।

ऐसी सादगी, स्वाभाविक सादगी, ये लघु रूप है। स्वाभाविक सरलता ये लघु रूप है। दुनिया के साथ जो मेनर्स का मामला आता है। अब ये प्रोटोकोल का प्रश्न है। भारतीय नेता प्रोटोकोल के कारण विदेश में जाये तो उन्हें भारतीय ड्रेस पहनना पड़ता है! डो.राधाक्रिष्नन् धोती पहनते थे। लेकिन प्रोटोकोल हमारे लिए हो, हमें प्रोटोकोल के लिए नहीं होना चाहिए। छोड़ो यार, ये तो कलिप्रभाव है! देश में परिवर्तन होता रहता है। तब मेरे मन में व्यासपीठ की कुछ अपेक्षाएं रही थी कि ऐसा हो, ऐसा हो। और अस्तित्व की अपेक्षा। लेकिन हुआ नहीं वर्ना और ऊंचाई हो जाती! मेरे मन में तो ये है कि हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में और ऊंचा दिखा दे। मेरी मनीषा ये है कि राष्ट्र का इतना गौरव बढ़े। केनेडा की एम्बेसी में जाना था। मेरे साथ ललितभाई पटेल थे। तो मुझे केनेडावाले भाई ने कहा कि बापू, वहां धोती पहनना ऐसा लगेगा! तो मैंने कहा, मैं नहीं आऊंगा, पासपोर्ट ले जा! तो कहे, रूबरू चाहिए। तो मैंने कहा, ये बावा ऐसे ही आयेगा! अपने में अपना होता है तो अस्तित्व मदद करता है। लेकिन कलिप्रभाव है बाप! कलि छाया है! कलिप्रभाव काम कर रहा है। कुछ होना चाहिए, नहीं हो पा रहा है!

तो, वानररूप ये गुरु का स्वाभाविक लक्षण है। सूक्ष्म रूप ये गुरु का स्वाभाविक लक्षण है। लघु रूप ये गुरु की सादगी और सरलता का परिचय है। उसको बड़ी जटिल-कठिन बातें करके पंडित नहीं बनना है। उसे कोई झाकझमाळ में, लिबास में अपनी प्रतिभा नहीं बनानी है। ये लघु रूप है। गुरु में गुरुता होते हुए भी अपने आपको लघु बनाता है ये है लघु रूप। काव्य में लघु-गुरु आता है। गुरु स्वयं एक महाकाव्य है। ये परमगुरु है। लेकिन अपने आप लघु बनाये रखता हैं। तो वानररूप, सूक्ष्म रूप, लघु रूप। भीमरूप और विकट रूप दोनों को साथ में ले लो। अंतर तो होगा ही कि शब्द बिलग है लेकिन ये कोई शास्त्रीय बातों मे मैं नहीं जाउंगा। भीमरूप माने भीषण या विकट; सगोत्री शब्द है। गुरु भीमरूप होता है। गुरु विकट रूप होता है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराया। कृष्ण जगद्गुरु है। उन्होंने अपना भीषण रूप दिखाया तो अर्जुन जैसा महाबलि डर गया! योगेश्वर कृष्ण को जरूरत पड़ी होगी कि ये आदमी 'मैं कर रहा हूं, मैं कर रहा हूं', ऐसा सोच रहा है, तो बता दूं मेरे विकराल दाढ़ों से कि जिसको तू मारने की बात कर रहा है वो मेरे मुख में खेल रहे हैं! मुंह बंद करूं इतनी देर है कि सब अभी खत्म हो जायेंगे! अभी ये पांच हजार साल पहले की ही बात है। आज के बारे में सोचो।

गुरु का विकट और भीमरूप का अर्थ क्या है? मुझे लगता है, गुरु विकट और भीमरूप नहीं होता। आश्रित कुछ भूल कर देता है और उसको पता लग जाता है कि मैंने यहां अपराध कर दिया है समझदारीपूर्वक, स्वार्थ के कारण, द्वेष के कारण, खबर नहीं किसी कारण

मैंने अपराध किया है, तब वो गुरु विकट और भीम न होते हुए भी भीम भासता है! वो भीषण लगने लगता है। कई अर्थ कर सकते हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से गुरु के भीषण और भीम रूप के पक्ष में मैं नहीं हूं। नहीं, बुद्धपुरुष भीषण बन जाये तो आश्रित बेचारें दु:खी-दु:खी हो जाये! आश्रितों के कारण वो दिखाई दे तो वो गुरु की जिम्मेदारी नहीं है! बाप! सद्गुरु भीमरूप, विकटरूप नहीं होते। एक रूप होता है दूतरूप। दूत का काम है, यहां का संदेश लेकर वहां पहुंचाना। वहां का संदेश लाकर सही एड्रेस पर पहुंचाना। बुद्धपुरुष क्या करते हैं? शास्त्रों से, गुरुओं से, अपने अनुभवों से सूत्र का खत लेकर जिज्ञासुओं के एड्रेस पर पहुंचा देता है। ये उसका दूतीकर्म है।

बुद्धपुरुषों ने जगत की बहुत सेवा की ये मानना पड़ता है। हम क्या सेवा कर सकते हैं? ठीक है, टिकट ले दो, आने-जाने की व्यवस्था कर दो! ठीक है, करना पड़ता है! लेकिन सबसे बड़ी सेवा तो बुद्धपुरुषों ने की जैसे कबीर, नानक; कितनी सेवा! ये दूत बनकर सेवा करते हैं। श्री हनुमानजी जानकी को राम का संदेश दूत बनकर पहुंचाते हैं और जानकी का संदेश राम को। ये बुद्धपुरुष का दूती लक्षण है। बुद्धपुरुष का एक लक्षण है पुत्ररूप; ये पुत्ररूप बन जाता है। आपने दर्शन किये हो अथवा तो आप जानते हो तो पता लगेगा कि आनंदमयी माँ (कनखल) साधु समाज में बहुत पहुंची हुई; सिद्ध माँ सब मानते थे। बड़ी भोली-भाली, अंत:करण शुद्ध माताजी थी। वो अपने आपको सदैव सब की पुत्री ही मानती थी। कोई भी महात्मा मिले उन्हें पिताजी कहके प्रणाम करती थी। अखंडानंद सरस्वती महाराज आये, रामसुखदासजी बाप आये, भाईजी गोयेन्काजी, स्वामी शरणानंदजी, हमारे विद्यानंदजी आये, कोई भी आये, 'पिताजी' कहती थी। बुद्धपुरुष का ये लक्षण है ये पुत्रवत् रहता है। इसी रूप में वो जीवन व्यतीत करता है। तो हनुमानजी के जो कुछ रूप दिखाये गये हैं, जो निराकार से आकार बना था और वानराकार से भी कई प्रकार के रूप उसने धारण किये हैं। उसके पीछे मुझे गुरु के स्वाभाविक लक्षण नजर आते हैं। 'मसक समान रूप कपि धरी।' मच्छररूप। मच्छर नहीं बने, मच्छर के समान बने। यहां लंका में हनुमानजी को कोई पकड़ न पाये इसलिए बहुत छोटा-सा रूप लेना था। तो, मेरी व्यक्तिगत मानसिकता में ये मच्छर ही बने होंगे। मुझे लगता है कि श्री हनुमानजी के मुख में मुद्रिका है, वो मुद्रिका भी सूक्ष्म हो गई और हनुमानजी 'राम, राम, राम' गुनगुनाते थे। तो लंकिनी के कान के पास आकर हनुमानजी गुनगुनाये 'राम, राम, राम' तो लंकिनी को लगा कि कोई चोर आया है इसीलिए उसने तुरंत मच्छर को पकड़ लिया! गुरु वो है कि कभी उसको इतना छोटा मच्छर माने बिलकुल इसकी कोई गिनती नहीं; सद्गुरु ऐसा होता है कि दुनिया कहे, तेरी कोई गिनती नहीं, तो भी गुनगुनाता रहता है क्योंकि उनके मुखमें हरिनाम होता है। एक रूप है हनुमानजी का-

पवनतनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।

गुरु का एक रूप है मंगलरूप। हनुमानजी का एक रूप है

गुरुतत्त्व तत्त्वत: निराकार है। भाव से हम उसमें आकार निर्मित करते हैं। राजस्थान की खदानों से निकला हुआ शुभ्र संगेमरमरी पत्थर है बहुत अच्छा। चांदनी को भी शरमा दे इतना इसका उजाला है। लेकिन जब तक हमारी कल्पना रहती है तब तक है ये पत्थर। लेकिन ये कल्पना के बाद जब साधक में भाव जगने लगता है; भाव से मूर्ति निर्मित होती है। भाव आकार देता है। गुरुतत्त्व निराकार है लेकिन हमारा भाव उसको आकारित करता है।

गुरु का प्रभाव मत देखना, गुरु का स्वभाव देखना

'मानस-रुद्राष्टक' में स्वाभाविक लक्षण जो बुद्धपुरुष के होते हैं उसमें हम और आप मिलकर स्वाभाविक रूप से दर्शन कर रहे हैं -

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

निराकार ब्रह्म जैसे निज इच्छा से आकार लेता है वैसे ही गुरुतत्त्व भी निराकार होते हुए कभी-कभी निज इच्छा से साकार रूप धारण करता है और इसके कई रूप होते हैं। मेरे पास कई जिज्ञासा है। इसमें से एक जिज्ञासा ये है कि बहुत अच्छा लगता है लेकिन थोड़ा असमंजस हो जाता हूं कि गुरु के इतने रूपों की चर्चा क्यों? कोई एक रूप क्यों न बता दिया जाय? प्रसंगोचित अच्छी जिज्ञासा है। जैसे कि कथा के दूसरे दिन व्यासपीठ मुखर होकर कह गई कि ये अष्टक भगवान शिव की अष्टमूर्ति का दर्शन कराता है।

ये निराकार जो है वो साकार होता है और मैंने कहा कि ये शंकर निराकार से हनुमान के रूप में साकार हुए। इसके भी बिलग-बिलग रूप कभी लघुरूप है, कभी विशालकाय है, कभी विकटरूप है, कभी भीमरूप है। कुछ बाकी है इसकी आज चर्चा करूं। तो प्रश्न बड़ा प्यारा है, प्रसंगोचित है, पूछने योग्य भी है और इसके बारे में मुझे बोलने का मन भी करता है। इतने रूप क्यों? कोई एक रूप हमें पकड़वा दिया जाय तो बेटर है। क्यों हम कन्फ्यूज़ हो जाये ऐसी चर्चा? ये चर्चा इसीलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति की विशेष रूप की एक जिज्ञासा होती है। मुझे जिस रूप की जिज्ञासा है, रुचि है, हो सकता है आपकी रुचि ये न भी हो। और मेरी रुचि से सहमत होना ये आप धर्मान्तर करेंगे। आपको नहीं करना चाहिए। आपकी अपनी रुचि होनी चाहिए। जैसे कि मैंने बार-बार कहा कि मुझे हनुमान का ये ही रूप पसंद है। ये मेरी रुचि है। आपको वीररूप में, पहाड़ लिए हुए पसंद हो तो आपकी रुचि है। तत्त्वत: भिन्नभिन्न रूप का दर्शन कराकर साधक को, आश्रित को मूल स्वरूप की ओर जोड़ने का ये सात्त्विक प्रयास है।

आपने कभी सोचा कि हमारे देश में परमात्मा का एक रूप और एक चित्र क्यों नहीं निर्मित हुआ? राम ऐसा ही हो ऐसा क्यों नहीं हुआ? त्रेतायुग में राम हुए। माना उस समय फोटोग्राफी की व्यवस्था नहीं थी, चित्र तो होते थे। शिल्प तो होते होंगे। तो क्यों ओरिजिनल, जैसा था ऐसा क्रिष्न हमारे सामने पेश नहीं किया गया? राम बहुत दूर नगरी है मानो, लेकिन क्रिष्न को तो पांच हजार साल ही तो हुए हैं। कोई तो ऐसा आदमी निकलता जो क्रिष्न की प्रमाणित छबी, क्रिष्न जैसा था ऐसा एक चित्र, राधेजी का एक चित्र बनाकर हमको दे देता। आज जो हमारे पास चित्र है वो तो हमारी कल्पना के चित्र है। जयपूर में राम को लेने जाओ तो कई

शकलवालें राम मिलेंगे आपको! ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान है तो भगवान किसी को भी प्रेरित कर देता उस जमाने में कि तू मेरा चित्र अंकित कर ले ताकि शताब्दी-युगों तक ये मेरी छबी कायम रहे। ये घटना स्वाभाविक हो सकती थी। लेकिन क्यों नहीं हुई? क्यों ऐसी चाह परमात्मा को नहीं हुई कि मेरी एक छबी हो जाये? परमात्मा ये कर सकता था। भगवान शंकर ने एक रूप दे दिया होता तो अच्छा होता। ये बहुत सरल था लेकिन नहीं हुआ इसके पीछे इश्वरीय संकेत है और वो संकेत मेरी व्यासपीठ को ये लगता हैं कि परमात्मा ने सोचा होगा कि जो लोग आयेंगे वो भिन्नभिन्न रुचिवालें आयेंगे। उसको मेरी एक छबी पसंद न भी हो। प्रत्येक की रुचि के अनुसार उसका एक चित्र हो, शिल्प हो इसलिए परमात्मा अरूप रहा। फिर हमने अपने-अपने ढंग से मूर्तियां घड़ी।

यहां बुद्धपुरुष के लक्षण के बिलग-बिलग रूप की चर्चा सार्थक है। मेरे लिए जरूरी नहीं है ये चर्चा। क्योंकि मेरा एक रूप निश्चित है मेरे बुद्धपुरुष का। मैं ये चर्चा आप नहीं जानते इसीलिए नहीं करता लेकिन व्यासपीठ वैदकीय क्रिया में है। ये चलता-फिरता मोबाईल अस्पताल है। इसमें हर एक की नस पकड़कर निदान किया जाता है। मैं पलांठी लगाकर बैठ चुका हूं। मुझे कोई बिलग-बिलग रूप में भटकने की, ऊलझने की कतई जरूरत नहीं है। ये अहंकार नहीं, ये त्रिभुवन-कृपा है। और आप सोच नहीं सकते, मुझे लगता है मेरे सामने जो हनुमान है, उसमें मुझे मुगट नहीं दिखता, पघड़ी दिखती है। मैं क्या करूं? क्योंकि मेरे लिए एक वस्तु निश्चित है। आपको निश्चित है तो आप केवल अेन्जोय करो। जैसे कोई गज़ल गाये तो आपको सभी शे'र याद है, फिर भी आप एन्जोय करते हैं। शायद गज़ल गायक छोड़ दे लेकिन आप गुनगुनाते रहोगे। तो बाप! आपके मन में भी कोई रूप निश्चित है तो मेरा काम थोड़ा कम हो गया। न हो तो गज़ल सुनो। 'रामायण' मेरी गज़ल है। तुलसी की लिखी, बापू की गाई, मेरे श्रोताओं से सुनी गई गज़ल है। जैसे दुष्यंत ने कहा था -

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।

मेरा भी तो वो ही हाल है। मैं जो ओढ़ता-बिछाता हूं वो ही कथा आपको सुनाता हूं। निश्चय कर लो। न करो तो एन्जोय करो, धीरे-धीरे पकड़ में आ जाएगा कोई रूप। न आये तो अनेकरूपरूपाय है। सभी रूप को एन्जोय करो। अनेक रूप की, बुद्धपुरुष के स्वाभाविक रूपों की चर्चा सार्थक है। इसीलिए बुद्धपुरुषों ने की है। व्यासपीठ कर रही है। कोई चित्रकार चित्र करे लेकिन तुलसी चित्रकार नहीं है। तुलसी चरित्रकार है इसलिए उसने अपनी रामकथा का नाम 'रामचरित मानस' रखा। ये चरित्रकार है। फिर भी कवि के नाते शब्दों के माध्यम से चित्र निर्मित करता है। और वक्ता को भी शब्द का ही आश्रय लेना है। इसलिए वक्ता भी परमात्मा के किसी न किसी रूप को शब्द से चित्रित करता है। कोई भी कवि शब्द का आश्रय लेगा। वक्ता भी शब्द के द्वारा नई-नई मूर्तियां पेश करेगा। जो आपके मंदिर के योग्य हो, प्राणप्रतिष्ठा करायेगा।

मैं आपको 'मानस' से ही कुछ मिशालें पेश करूं क्योंकि आपका अच्छा प्रश्न है, विषय के अनुकूल है। ऐसे प्रश्न मुझे अच्छे लगते हैं। वर्ना तो कैसे-कैसे प्रश्न आते हैं! मैंने तुम्हें बरतन साफ़ करके ओलरेडी दिया है। तुम्हारी थाली साफ़ कर दिया। अब तो थाली कहां रखना, बरतन कहां रखना, इतना तो आप करे! छोटी-छोटी शिकायतें लेकर कथा में क्यों आते हो? लाईन में पहले ही खाना खाना है तो घरमें बैठो ना! तुम्हारी कितनी क्षुद्रता नजर आती है! कितना फनी लगता है! हमको ऐसे खाना मिला! फलां वोलियेन्टर ने ऐसा कर दिया! घर में तो कुछ नहीं बोलते हो! एक आयोजन तो करके देखो यार! मुझे इतना सुनने के बाद तुम क्या प्रतिफल दे रहे हो? मेरे लिए यद्यपि सब अच्छी व्यवस्था होती है। ये आपका आदर है लेकिन कभी-कभी मेरे रहने की व्यवस्था ठीक न हो तो भी मैं शिकायत नहीं करता

हूं। कोई आयोजक तो बोले कि मैंने शिकायत की। मैं नहीं करता। मैं आधे घंटे में अपने योग्य कमरा बना देता हूं। तुम क्या जानो यारो! आप सोचिये तो! शिकायती चित्त अध्यात्मयात्रा नहीं कर सकता। अरे! शिकायती चित्त व्यवहारधर्म में सफल नहीं होता। क्या ये लिये बैठे हो? कई लोग सिर्फ घूमने आते हैं! मार-तोड़के पास ले लेते हैं! अपने रिलेटिव्स को पहले खाना खिला देते हैं! अच्छे उतारे और प्राईवेट प्रेक्टिस करनी हैं! तुम क्या मेरी व्यासपीठ की मजाक करने के लिए आते हो? आप सोचिये, थोड़े आगे बढ़ जाओगे। थोड़े और अेन्जोय कर पाओगे लेकिन ऐसी शिकायतें! और तमिल भाषावालें मेरी भाषा भी नहीं समझते होंगे। बहुत से हिन्दीभाषी भी है। ये जितनी शिकायतें है, गुजरात की ही है! सोचो यारो! व्यवस्था तो हो सके इतनी सब करते हैं छोटी-छोटी बातों को लेकर। ऐसे प्रश्नों का मैं क्या उत्तर दूं? ये तो थोड़ा सावधान करता कि थोड़ी टकोर आपको काम आ जाये तो! कई लोग कहते हैं, कथा में आप आ जाना। हम आगे बिठायेंगे! दलाली करते हो? मजाक क्यों करते हो व्यासपीठ की? कथा तो एक ही मिनट में मुझे और तुमको जाग्रत कर सकती है। हां, सवाल हो तो ऐसा हो कि इतने रूपों की बातें आती है, तो हमें उलझन में क्यों डाले जा रहे हो? स्वागत योग्य प्रश्न है। स्वीकृति को प्रकृति बनाओ। ये महामंत्र है यारों! कोई भी समस्या लाइट हो जाएगी, स्वीकार कर लो।

तो बाप! 'रामचरित मानस' में तुलसी शब्दों से चित्र अंकित करते हैं। एक चित्र है राम का -

राजिवनयन धरें धनु सायक।
भगत बिपति भंजन सुखदायक।।

किसी को धनुबाणवाला राम पसंद है तो ले ये छबी। और पुष्पवाटिका में राम आते हैं वहां तुलसी ने जानकी का राम पेश किया है। वो ही राम को तुलसी ने रणांगण में रखना है तो राम का रूप ऐसा चित्रित करना होगा। और धनुषभंग करने का वीरता का काम करना है तो उदित उदयगिरि मंच पर। लेकिन पुष्पवाटिका में राम को सूर्य नहीं बताया। 'जुगल बिधु' लता भवन से राम आये तो तुलसी कहे, मानो दो चंद्रमाँ बादल के पटल को लता को हटाकर पुष्पवाटिका में आये। कुछ देर बाद वो सूर्य हो जायेंगे। यदि आपको राम की उष्णता चाहिए तो राम का सूर्यवाला रूप उठाओ और आप के दिल में शीतलता चाहिए तो रामचंद्र को पकड़ो। यदि आपकी रुचि शौर्य की है तो 'रणरंगधीरं'; यदि आप बहुत सौम्य रूप को चाहते हैं शृंगारवाले रूप को तो 'राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्'; तुलसी की एक पंक्ति पर्याप्त है। जिसकी जैसी रुचि वो मूर्ति पकड़ लो। और पकड़ने के बाद पलांठी लगाकर बैठ जाओ। मेरा ये इष्ट, मेरा ये हरि। परमात्मा राम के कितने चित्र रामकथा में प्रस्तुत करते हैं! ये अभ्यास का, खौज का और इस पर आप पीएच.डी. कर सको ऐसा विषय है। कितने रूप है? अगणित। यदि बच्चों को रामकथा समझानी है तो रामकथा चित्रपोथी है। अनेक रूपरूपाय। और आप देखिए, एक ही आदमी है लेकिन हमारी आंख की रुचि अथवा तो आंख का रागद्वेष उसी व्यक्ति में हमें दूसरा रूप नहीं दिखाता? एक वो ही व्यक्ति है, एक आदमी उसको देखकर रो रहा है, एक दूसरा व्यक्ति है उसे देखकर जलन कर रहा है कि उसके पीछे लोग क्यों दौड़ते है? ये क्या तमाशा? एक ही व्यक्ति में अनेक भाव चारों और से आते हैं। तुम्हारी एक अपनी मूर्ति बना लो। एक निर्णय कर लो। वो तो ऐसा है। उसको तुम जिस रूप में देखना चाहो; लघुरूप में, विराटरूप में, मसकरूप में देखना चाहो।

मेरे भाई-बहन, एक ही बुद्धपुरुष का निराकारपना आकार लेता है और आकार को भी भिन्न-भिन्न रूपों में देखना पड़ता है। काश, कोई हमारे काम का आकार मिल जाये। परमात्मा कितने रूप लेते हैं! भगवान ने दश अवतार क्यों लिये? कभी मत्स्य, मगर, वराह कुछ-कुछ क्यों? मसक समान, मच्छर रूप। कल दादाजी पूछ रहे थे मसक का अर्थ बिल्ली करे तो? हां,

गुरु बिल्ली है। यदि बुद्धपुरुष का लक्षण है तो गुरु भी मार्जार है। किस रूप में? आपने देखा है कि बिल्ली जब बच्चे को जनम देकर सात घर में घुमाती है तब उसकी आंख खुलती है। गुरु मार्जार बनकर अपने शिष्य को पकड़कर ज्ञान की सात-सात भूमिका के कमरे में घुमाता है तब आंख खुलती है, तब जागृति आती है। या तो नव कमरें में घुमायेगा। कभी श्रवण भक्ति में, कभी कीर्तन भक्ति में, किसी कमरे में तब हमारी आंख खुल जाती है। रामकथा का सार रूप में अर्थ तीन है। रामकथा जागृत करती है वक्ता-श्रोता दोनों को। रामकथा सावधान करती है। रामकथा प्रभु के चरणों में प्रीत निश्चित कराती है। हमें जागृत होना है, जागृति के बाद निरंतर सावधान रहना है और सावधान रहकर कहीं प्रेम न छूट जाये, प्रभुपद प्रीति अखंड बन जाये ये 'मानस' का निर्णय है। श्री हनुमानजी विभीषण को मिलने गये तो ये तीन पद्धतियों पर काम किया। हनुमानजी जैसे गये उस समय विभीषण जागा। उसके बाद सावधान किया कि जिस राम को तू भजता है उसी राम की जानकी को तुम्हारा भाई अपहरण करके आया! अपहरण की योजना बनी तब भी तू कुछ नहीं बोला! अपहरण करके आया तब भी तू चूप है! जरा सावधान हो जा! तू बोलता क्यों नहीं? तेरा सत्य इतना दबा हुआ क्यों है? जब तू सावधान हो जाएगा तब मेरी जवाबदारी होगी परमात्मा के चरणों तक पहुंचाने की। हमारे जीवन में भी हम जागे, थोड़ा सावधान हो जाये और प्रभुपद प्रीत के पात्र बने। संत क्या करता है? ब्रह्मानंदजी ने क्या कहा?

संत परम हितकारी, जगत मांही।
प्रभुपद प्रकट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी।

वाल्मीकि ने 'रामायण' लिखा; आदि कवि है। भगवान शिव ने 'रामचरित मानस' का निर्माण किया, संतों के मत में भोलेबाबा अनादि कवि है। एकांब्रेश्वर अनादि है। अब शंकर ने रचना की फिर दूसरे वक्ताओं को बोलने की जरूरत है? फिर इतनी 'रामायणें' क्यों रची गई शत करोड 'रामायण'? और चलो, शंकर ने 'मानस' लिख दिया तो चार वक्ता को क्यों बैठाये गये? ये अकेले कहते तो बात खतम! इधर याज्ञवल्क्य बाबा बैठा है। इधर हमारा भुशुंडि बैठा है और गोस्वामीजी स्वयं बैठ गये। क्यों? तत्त्वत: कथा एक है, लेकिन सामनेवालों की रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न वक्ताओं ने भिन्न-भिन्न भूमिका से गाई। शिव के प्रत्येक निवेदन ज्ञानमूलक होंगे। भुशुंडि का निवेदन पढ़ोगे तो उसमें उपासना झलकेगी। परम प्रसन्न परम विवेकी याज्ञवल्क्य महाराज रामकथा का गायन करे तो वहां आदमी कर्मठ हो जाएगा। और तुलसी गायेंगे तो प्रपत्ति, शरणागति, प्रपन्नता की बात आयेगी। रुचि की भिन्नता के कारण एक ही स्वरूप को बिलग-बिलग रूप में प्रस्तुत किया गया। 'रुद्राष्टक' में भी स्वाभाविक लक्षण बुद्धपुरुषों के भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया।

तो बाप! कथा अनंत है, अमित है। नाम अमित है। लीला अमित है। रूप अमित है। तुलसी कहते हैं, संशय मत करो। जिसके विमल विचार होंगे वो संदेह नहीं करेंगे। तो श्री हनुमानजी महाराज जो निराकार है, वो वानराकार हुए और वानराकार के भी भिन्न रूप है। आगे एक रूप देखिये। सखारूप। गुरु सखारूप होता है हमारी रुचि के अनुकूल। अर्जुन को पता नहीं कि ये कौन है? विश्वरूप दर्शन के बाद तो पता लग ही गया कि ये कोई ग्वाल नहीं है। ये हमारे साथ एक थाली में भोजन करता है, हंसी-मजाक कर लेता है, हम गैरसमझ न करे। ये अनंत परमात्मा है। लेकिन वो कुबूल करता है, मैंने आज-तक आपको सखामात्र समझा! सुदामा को पता नहीं होगा? साहब! जो गोविंद के समीप रहे वो गोविंद जैसे ओलरेडी होने लगे थे फिर भी बिलग भाव से किसीने सख्य रखा, किसीने दास्य भाव रखा, किसीने ये भाव रखा। बुद्धपुरुष का एक रूप है सखारूप। त्रिभवुन गुरु शिव, उसका एक रूप सखा है। प्रमाण -

सेवक स्वामि सखा सिय पी के।

बुद्धपुरुष का स्वाभाविक लक्षण है वो सखा लगता है। सखा भाव। अब तो आप को भी आदत हो गई है, मैं

कथा में आपको बीच-बीच में 'यार' क्यों कहता हूं? ये बिलकुल प्रासादिक उच्चारण है मेरा, क्योंकि श्रोता व्यासपीठ के सख्य से जुड़े रहे। धर्म का कर्तव्य है, लोगों को दूर न कर दिया जाय। जितना हो सके संनिकट रहे ये जरूरी है। मर्यादायें जरूरी है। लेकिन धर्म का प्रचार कैसे होगा? लोगों को निर्भार करने से। उसको बिलकुल निकटता महसूस होनी चाहिए। तो श्री हनुमानजी महाराज का एक रूप है सखा। दूतवाली बात तो मैंने कह दी। सेवक; और सेवक का एक ही लक्षण, जो करे सेवकाई, दादगीरी न करे! सेवक वो है जो सेवकाई करे। हनुमानजी महाराज याने बुद्धपुरुष या जगद्गुरु शंकराचार्य ने, भगवान ने विश्व की सेवा की। है तो साक्षात् शंकर लेकिन धरती पर क्यों आये? बत्तीस साल तक जिन्होंने दुनिया का परिभ्रमण किया। विश्व का कोई इतनी छोटी उम्र में नहीं कर सकता। और हम और आप इनकी पूजा क्या खाक् कर सकते हैं! जिस पर कनकाभिषेक होता है, स्तोत्र पर स्तोत्र आये हमारी परंपरा में। उन्होंने हमारी सेवा की है। विश्व को जोड़ा है। बुद्धपुरुष सेवक के रूप में आ जाता है। बुद्धपुरुष का एक लक्षण है, वो सेवा करता है। बुद्धपुरुष का एक स्वाभाविक रूप होता है देवरूप। श्री हनुमानजी को लोगों ने माना, ये देवरूप है। ये कोई वानर के आकार में देवरूप है। देव यानी जिसमें शास्त्रोक्त समस्त दिव्यता भरी हो, आरोपित नहीं। इसलिए हम गुरु को गुरुदेव कहते हैं। बुद्धपुरुष दिव्यता से भरा हुआ होता है। भगवान जगद्गुरु आदि शंकराचार्य का जो चित्रजी है, इतना मासूम चित्र कहीं देखने में नहीं आता क्योंकि दिव्यता से भरा हुआ है।

कोई उम्मीद जब नहीं दिखती,
तब मुझे तू दिखाई देता है।
- राज कौशिक

ये है दिव्यता भरा गुण। तो बाप! जो देवताओं का वर्णन है वो तो है अवश्य लेकिन सच्चा दैवत्व-दिव्यता है। बुद्धपुरुष देवीरूप भी है। श्री हनुमानजी महाराज वो रूप भी धारण कर चुके हैं। बुद्धपुरुष अपनी माँ है। इसलिए जिसकी किसी एक बुद्धपुरुष में नितांत निष्ठा हो गई है उसकी माँ कभी मरती नहीं। शरीरधारी माँ तो मर जाती है लेकिन जिसको सद्गुरु मिल गया उसकी माँ कभी नहीं मरती। और बुद्धपुरुष का एक स्वाभाविक लक्षण है मौनरूप। पूरी दक्षिणामूर्ति परंपरा में गुरु मौन ही तो रहता है। मौन व्याख्यान ही तो होता है और शिष्यों के संशय छिन्न-भिन्न हो जाता है। बोलना तो मजबूरी है। मेरे भाई-बहन, गुरु मौन मूर्ति है। बोले तो वेद भी पीछे रह जाये, न बोले तो आसमां का सन्नाटा छा जाये! गुरु बोलता क्यों है, पता है? ये बोले तो हमारे दु:ख का एक उपाय है। चार प्रकार से आदमी के दु:ख मिटाये जाते हैं।

एक बात तो बुद्ध विचारधारा के अनुकूल है न कि संसार में दु:ख है। अब दु:ख है तो उसका कारण भी होना चाहिए। क्योंकि कार्य-कारण सिद्धांत जगत को पकड़े हुए है। एक दु:ख का कारण है अहंकार। आदमी का 'मैं' दु:ख का कारण है। बुद्धपुरुषों की कृपा से, त्रिभुवनकृपा से मुझे जो दु:ख के कारण दिखे हैं वो ये है। एक, अभाव का दु:ख। दूसरा, दूसरों के प्रभाव का दु:ख। तीसरा, दुर्भाव का दु:ख। प्रेक्टिकल कारण खोजो, बाकी कर्म की तो बड़ी गहन गति है। अरे साहब, बहु सुंदर हो तो सास सहन नहीं कर सकती और सास सुंदर हो तो बहु सहन नहीं कर सकती! दुनिया में देखो, एक-दूसरे के प्रभाव का प्रतिफलन दु:ख होता है। दुर्भाव का दु:ख है। छोडो दुर्भाव। नरसिंह महेता ने कहा-

सकल लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे ...

दु:ख का कारण है दुर्भाव, एक-दूसरे के प्रति राग-द्वेष। या तो हमारे जीवन में अभाव का या प्रभाव का दु:ख है। कोई अच्छा गाना गा ले तो दूसरे के हृदय में उसका प्रभाव देखकर पीड़ा होती है! काव्यपाठ होता है, एक शायर जम जाये तो दूसरे को पीड़ा होती है! अभाव का, प्रभाव का, दुर्भाव का दु:ख। इन सबको थोड़ा विवेक से हटाया भी जा सकता है। लेकिन सबसे बड़ा दु:ख का कारण है खुद के स्वभाव का दु:ख। कई लोग के

पास बस कुछ होता है लेकिन स्वभाव के कारण चीड़चीड़! वो भी दोषी नहीं है, इनकी प्रकृति है। स्वभाव का दु:ख। व्यासपीठ व्यक्ति के स्वभाव पर काम करती है। गुरु का प्रभाव मत देखना बाप! विवेक आये तो गुरु के स्वभाव को देखना। बुद्धपुरुष स्वभाव के बादशाह होते हैं। कागभुशुंडि का गुरु नि:शूल है। ऐसा बुद्धपुरुष है जिसके पास कोई शूल नहीं, पीड़ा नहीं। निजानंद में डूबा है। और जिसकी स्तुति की वो त्रिशूलधारी है। गुरु है नि:शूल। महाकाल है त्रयशूल धारण करनेवाला और मिटानेवाला। एक के पास बैठने से उसने पास शूल नहीं तो हमें भी नहीं होना चाहिए। ए.सी.कमरे में बैठो तो पसीना नहीं होना चाहिए। और यदि त्रिशूलवाला महादेव है तो वो शूलहारी है, शूल को खतम करता है। तो भुशुंडि को न शूल रहना चाहिए। मगर वो कहता है, एक शूल मिटता नहीं, निरंतर चूभता है।

एक सूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।।

फिर एक स्मृति दस्तक दे रही है, त्रिभुवन-स्मृति। माँ रसोई बनाने की लकड़ियां काटने के लिए गई। मैं उसके साथ गया। थोड़ा गाय का घास भी काटना था और चूल्हा जलाने के लिए बबूल की छोटी-छोटी लकड़ियां काटनी थी। मैं साथ में जाता था। मैं लौट रहा था माँ के साथ, उसमें मेरे पैर में कांटा चूभा और जल्दी-जल्दी में जोश में मैंने ध्यान नहीं दिया तो अंदर घुस गया! फिर जब बहुत घुस गया तब मैं निकालने गया तो कांटा टूट गया! अंदर कांटा रह गया। थोड़ा मेरा पैर लंगड़ाता हुआ देखकर माँ समझ गई। और मुझे कहा, कांटा चूभा? मैंने कहा, नहीं माँ, अभी पहुंच जायेंगे। मैंने मानो कुछ हुआ नहीं ऐसा कर दिया वर्ना मेरे से ज्यादा पीड़ा उसको होती। तो ऐसे हम घर चल दिये। तो दादा बैठे थे। कोशिश तो मैंने बहुत की कि मेरे पैर ऐसे न हो ताकि दादा को पीड़ा न हो। लेकिन बुद्धपुरुष तो अंदर की पीड़ा भी जान लेते हैं। तो फिर एकदम खड़े हो गये! पूछा, क्या हुआ बेटा? मैंने कहा, कुछ नहीं दादाजी, एक कांटा चूभा। तो माँ थोड़ी लाज करके जो दरवाजे की बात मैंने की थी उसके पीछे से बोली, दादा, उसे एक कांटा लग गया है, तो कोई इधर-उधर हो तो कहो ना माधा को बुलाये। माधा नाई था, जिसने दादा की बहुत सेवा की। माधा को बुलाने को माँ ने जब बोला तो दादा ने कहा, माधा क्या कांटा निकालेगा? मेरे लिए एक मंत्र था। माधा क्या, मैं हूं ना? माँ से सूई मांगी, आज मैं उसका माधा! और धीरे-धीरे फूंक मारते हुए दादा ने कांटा निकाल दिया। तो भुशुंडि की जो पीड़ा है कि गुरु नि:शूल है। शिव त्रय:शूलधारी है या त्रयशूल मिटानेवाला है। लेकिन मेरा शूल सदा रहा और अल्लाह करे, सदा रहे ताकि मुझे मेरे गुरु के कोमल स्वभाव की स्मृति बनी रहे। स्मृति सबसे बड़ी सेवा है। तुम भूल जाओ ये सबसे बड़ा अपमान है। सबसे बड़ा सन्मान है बुद्धपुरुष की स्मृति। उद्धार कर देती हैं।

तो बाप! स्वभाव महत्त्व की वस्तु है। बुद्धपुरुषों के स्वभाव को जाने, उसे याद करे। हम कितने नासमझ हैं! गुरुजनों को भी कैसी खरी-खोटी सुनाने लगते हैं! फलां गुरु ऐसा, फलां गुरु वैसा! अरे छोड़ो यारों, उसके कोमल स्वभाव और उसके शील का स्मरण करो। व्यक्ति अपने स्वभाव के कारण दूसरे के स्वभाव को समझ नहीं पाते। बुद्धजनों के स्वभाव को भी नहीं समझ पाते! तो दु:ख है बाप! तो दु:ख के कारण भी है। कारण मिले तो दु:ख के उपाय भी है। दु:ख के चार उपाय। यद्यपि एक अर्थ में दु:ख को सपना कहा है, सुख को सपना कहा है। दु:ख सपना है तो इसका उपाय क्या? उपाय है मेरी समझ में। हम सोये हैं और सपना आ गया, सपनें में हम बहुत दु:खी है, भयभीत है। सपनें विचित्र होते हैं। और सपने में आये दु:ख से मुक्त होने के लिए जागना जरूरी है। जागने के चार उपाय है।

सपने में दु:ख है तो क्या उपाय? उपाय नंबर एक, किसी को कह रखो, आपको कोई निश्चित समय पर जगाये। आप खुद न जाग पाओ तो किसी स्नेही को कह दो कि मुझे तीन बजे जगा देना। मुझे चार बजे की ट्रेन से जाना है। सपने में आया दु:ख जागरण से जायेगा और जागरण के लिए किसी सुहृद की जरूरत है। कोई ऐसे सज्जन का संग करे। जब हम पीड़ा में हो, दु:ख में हो तब हमें थोड़ा विवेक दे दे, थोड़ा धैर्य दे। संग ऐसों का करो। शिकायत करनेवालों का संग मत करना। उनसे दूर ही रहना अच्छा है। उपाय है सज्जन संग। वो कहेगा, काहे का दु:ख? कितनी-कितनी अनुभवी बात करके हमें जगा दे। और जागे तो दु:ख गये! दूसरा, आप किसी का सहारा लेना न चाहे तो घड़ी में अलार्म रख दीजिए। और घड़ी सही समय पर बजने लगी। बजते ही नींद टूटेगी। नींद टूटी, सपना गया। सपना गया तो दु:ख गया। अलार्म क्या है? शास्त्रों के मंत्र, शास्त्रों के सूत्र। ये हमें सही समय पर घंटडी बजाता है कि 'मातृदेवो भव।' 'पितृदेवो भव।' 'आचार्य देवो भव।' तीसरा उपाय, न अलार्म लगाया है, न कोई सुहृद है, तो तीसरा उपाय है, भयंकर सपना देखकर आप चीख उठे तो आप की चीख आप को जगा देगी। दु:ख का तीसरा उपाय है कृष्णनाम की पुकार। 'हे गोविंद, हे गोपाल, अब तो जीवन हारे!' एक चीख, गजराज की चीख, द्रौपदी की चीख। आप सोचिये, 'हे हरि,' 'हे हरि,' 'हे महादेव!'

मैंने बिस्तर बांध लिया है गालिब,
कहां रहते है वो लोग, मुझे वहीं जाना है।

सर्जक को कहां जाना है? जिसका कोई नहीं उसके पास जाना है। रस्किन का विचार महात्मा गांधी ने उठाया था। जो कहीं के नहीं रहते हैं वो आर्तनाद करे तो उसीके हो जाते हैं। एक चीख, पीड़ा, पुकार, दु:ख से जागृत कर देती है। चौथा, व्यावहारिक उपाय, 'परसत पद पावन...' कोई बुद्धपुरुष का चरन छूआ जाय। जैसे कोई सोया है और धीरे से छू ले। एक वस्तु याद रखना, गुरुजनों के बहुत चरण छूए हैं फिर भी हम नहीं जागे! अब ऐसी स्थिति आने दो कि गुरु अपना चरण तुम्हें छुआये और अहल्या जैसी तमस से हम जाग जाये। 'प्रगट भई तप पूंज...' ये ठोकर नहीं है। गुरु ठोकर नहीं मारता। गुरु, हरि ठुकराता नहीं। आज तुने मेरा चरणस्पर्श किया न? आओ, आज वो पावन चरण से मैं तुम्हें छू लुं। और तेरा सपना टूटे, तेरा दु:ख जाये और तू भी आनंद से भर जाये।

तो बाप! दु:ख है, दु:ख के कारण भी है, दु:ख के उपाय भी है और ऐसा हो तो दु:ख से निवृत्ति भी है। दु:ख नहीं रहेगा।

संत मिलन सम सुख जग नाहीं।

जो सामान्य सुख नहीं है। जिसको आत्मसुख कहा या तो ग्रंथों ने निज सुख कहा। तुलसी ने 'स्वान्त: सुख' कहा। तो बाप! बुद्धपुरुष का एक स्वाभाविक लक्षण है मौन। तो बुद्धपुरुषों के मौन को समझना चाहिए। ओशो तो कहा करते थे कि पहुंचे हुए लोगों को बोलना इसीलिए पड़ा है क्योंकि लोग उसके मौन को समझ नहीं पाये! ये प्यारी बात लगती है। मौन बड़ा मुखर होता है, यदि हमारे पास श्रवण हो तो। अनकहा सुना जाता है। आज मुझे आपके सामने रामजनम गाना था लेकिन आज भी नहीं हो पायेगा!

मुझे जो दु:ख के कारण दिखे हैं वो ये है। एक, अभाव का दु:ख। दूसरा, दूसरों के प्रभाव का दु:ख। तीसरा, दुर्भाव का दु:ख। दु:ख का कारण है दुर्भाव, एक-दूसरे के प्रति राग-द्वेष। या तो हमारे जीवन में अभाव का या प्रभाव का दु:ख है। कोई अच्छा गाना गा ले तो दूसरे के हृदय में उसका प्रभाव देखकर पीड़ा होती है! अभाव का, प्रभाव का, दुर्भाव का दु:ख। इन सबको थोड़ा विवेक से हटाया भी जा सकता है। लेकिन सबसे बड़ा दु:ख का कारण है खुद के स्वभाव का दु:ख। व्यासपीठ व्यक्ति के स्वभाव पर काम करती है। गुरु का प्रभाव मत देखना बाप! विवेक आये तो गुरु के स्वभाव को देखना। बुद्धपुरुष स्वभाव के बादशाह होते हैं।

कथा-दर्शन

'रामायण' तुलसी की लिखी, बापू की गाई, मेरे श्रोताओं से सुनी गई गज़ल है।
कथा मुझे और आपको समझ देती है।
कथा बुद्धि से सुनो और हृदय से पहचानो।
रामकथा से दु:ख जाएगा और संत की कथा से संशय जाएगा।
गुरु स्वयं एक महाकाव्य है।
हमारी दशा भी गुरु है, हमारी दिशा भी गुरु है।
रुद्रद्रोह अच्छा है, विष्णुद्रोह अच्छा है, गुरुद्रोह बहुत भयंकर है।
मन का प्यार और बुद्धि का विचार केवल सद्गुरु को देना।
इक्कीसवीं सदी का गोल्डन गुरु हनुमान हथियारधारी नहीं होना चाहिए।
बुद्धपुरुष में अत्यंत सादगी होती है।
बुद्धपुरुष दिव्यता से भरा हुआ होता है।
बुद्धपुरुष तो अंदर की पीड़ा भी जान लेते हैं।
बुद्धपुरुष हमारा भाव देखता है, हमारी संवेदना देखता है।
कोई साधुपुरुष के सत्संग समान कोई सुख नहीं!
तत्त्व बदला नहीं जाता, भाव बदलता रहता है।
व्यक्ति को चाहिए रूप से स्वरूप तक की यात्रा करना।
शिकायती चित्त अध्यात्मयात्रा नहीं कर सकता।
सत्संग को गुणातीत रखो।
अध्यात्ममार्गवालों को किसीकी आलोचना नहीं करनी चाहिए।
करुणा का प्रतीक है अश्रु और अश्रु का स्वभाव है बहना।
जीवन को जानने की जरूरत नहीं, जी लो।
मौन बड़ा मुखर होता है, यदि हमारे पास श्रवण हो तो।

बुद्धपुरुष की सकामता परम की प्राप्ति के लिए होती है

मैं कल भूल गया; यद्यपि याद था फिर भी भगवान पधारे और मैंने प्रार्थना की आप कुछ अमृत वचन कहे; मैं चुक गया था, क्योंकि कल जलारामबापा का प्राकट्यदिन था, जलाराम-जयंती थी जिसने रामनाम और राम-रोटी की महिमा समूचे विश्व में विशेष रूप में प्रस्थापित की त्याग-वैराग के साथ। ऐसी पावन जन्मजयंती पूजनीय जलारामबापा की कल थी। मेरे स्मरण में था, लेकिन फिर भूल गया। लेकिन सायंकाल का जो कार्यक्रम था उसमें नीलेश ने बहुत खुशी व्यक्त की और उसने कहा कि आज 'जलाराम जयंती' के मंगल अवसर पर भजन-संध्या का कार्यक्रम संपन्न हुआ और उसने धन्यवाद व्यक्त किया। नीलेश के लिए तालियां! बहुत सुंदर समय पर उसने समापन किया।

बाप! निराकार जो शिव का स्वरूप है और वानराकार उसका रूप है और वानराकार में भी बहुत बिलग-बिलग रूप 'मानस' के मंच पर धारण किए। कितने रूपों का बयान हुआ, मुझे खबर नहीं है। जो हुआ; एक-दो शेष रूप है, उसकी आप से संवादी रूप में चर्चा कर लूं। श्रीहनुमानजी का एक रूप -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

श्रीहनुमानजी का एक रूप है महावीर। ये बुद्धपुरुष का रूप है। आदिकाल में हनुमान महावीर है। पचीस सौ साल पहले जैन धर्म में जो एक भारत की ही सनातन परंपरा रिषभ देव से चली। कृपया कोई मूल से विच्छेद न करे, पर्ण सूख जायेंगे। शाखाएं अग्नि में जलाने के योग्य हो जाएगी। पत्ते गिर जायेंगे, फ़ल नहीं लगेंगे। मूल होंगे तो दुनिया को रस मिलेगा। जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर आए। और भगवान महावीर ने 'महावीर' शब्द की खुद व्याख्या की। महावीर भगवान परम बुद्धपुरुष है। वो तो अहिंसा में माननेवाले थे। और कोई भी बुद्धपुरुष हिंसक नहीं होता। बुद्धपुरुष और धर्मपुरुष में थोड़ा अंतर है। तथाकथित धर्मपुरुष हिंसा करवाते भी है! स्वयं हिंसक हो भी जाते हैं! तो, भगवान महावीरस्वामी की जो व्याख्या है। एक बुद्धपुरुष, बुद्धपुरुष की व्याख्या कर रहा है।

आज मेरे पास एक चिठ्ठी ये भी है कि 'सद्गुरु स्वयं का गुरु बन सकता है?' 'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' हमारे यहां का ये मूल्यवान सूत्र है। स्वयं देव बनके देव को भजे। स्वयं गुरु बनकर गुरु को भजो, ये अद्वैत है। तो, स्वयं अपने मुख से परिभाषा करते हैं कि 'नमो अरिहंताणं।' भीतरी शत्रुओं को, भीतरी अरिओं को जिन्हों ने हन्त किया है वो सब महावीर है। कामादि षड्रिपु जिसको भारतीय सनातन धर्म कहता है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर इत्यादि; उसको हन्त किया है वो महावीर है। बहिर् दुश्मन को मारे उनको महावीर स्वामी महावीर कहते ही नहीं, इन्हें वो कायर कहते हैं। बात भी तो पते की है। दूसरें को मार देना कोई वीरता नहीं है। अपने भीतर के क्रोध को मारना, काम को मारना, वो वीरता तो है ही।

अब प्रश्न मेरा ये है कि बुद्धपुरुष सकाम होता है कि निष्काम होता है? आपने कहा, सकाम। कोई दूसरा कहना चाहता है? तत्त्वतः बुद्धपुरुष सो टचनुं सोनुं, जिसको न काल, न युग, न परिसर, न कोई घटना, न कोई विवाद, जंग न जगा सके। ऐसा तत्त्वतः पूर्णरूपेण परफेक्ट बुद्धपुरुष आपने कहा, सकाम। ओर कोई कहना चाहे तो मैं मेरी संवादी मेहफ़िल में शरीक करना चाहता हूं। बहुत-बहुत धन्यवाद। दो-तीन बातें आई। मैं बड़ी विनम्रता से कहना चाहता हूं, किसी ने नहीं कहा ऐसा 'रामचरित मानस' ने कहा। हम खोज नहीं पाये। ये मैं गाता हूं। मैं कौन जंतु? हम तो एक प्राणी है, जंतु है! हम क्या गानेवाले? अभी तो मैं सूर बैठा रहा हूं। अभी तो मंगलाचरण कर रहा हूं। 'मानस' की कथा तो मैंने कही ही कहां? भूमिका है ये और जैसे-जैसे त्रिभुवन गुरु की कृपा से गा रहा हूं। शास्त्र बड़ा गहन है और उतना ही सरल है यदि कोई समझानेवाले मिल जाए तो। बहुत गुप्त-प्रकट रत्नों से भरा ये रत्नाकर है। मैं अक्सर कहता हूं कि देवताओं ने और दानवों ने समुद्रमंथन किया, लेकिन द्वेष और ईष्या से किया, इसलिए चौदह रत्न निकले। यदि स्पर्धामुक्त और द्वेषमुक्त समुद्रमंथन किया होता तो समुद्र में से अनंत रत्न निकलते। सभी शास्त्रों को आदर देते हुए मंथन करते हैं तो अगणित रत्न निकलते हैं। आपके साथ मुझे सिद्धांत पेश नहीं करना है। मुझे विचार जरूर पेश करना है। इसका अर्थ कोई ये न करे कि महावीर स्वामी का अर्थ गलत है, प्लीज़। श्री हनुमानजी महाराज का एक रूप है, महावीर। एक दिन हमारी चर्चा संवाद के रूप में हुई एक-दो दिन पहले कि जो परमतत्त्व है वो परमयोगी भी होता है, परमभोगी भी होता है। प्रमाण 'रामचरित मानस' में है। मैं फिर एक बार इस बात को दोहराता हूं। भगवान राम भी परमतत्त्व है। भगवान कृष्ण भी परमतत्त्व है। परमतत्त्व परमयोगी है, परमभोगी है। लेकिन हमारे जैसा इसका भोग नहीं।

तो, बुद्धपुरुष का एक स्वाभाविक लक्षण महावीर है। महावीर का एक लक्षण वो पूर्ण रूप से निष्काम है, पूर्ण रूप से सकाम भी है। और एक अर्थ यहां से मिला कि दोनों से पर है। परेशं; 'रुद्राष्टक' में तुलसी 'ईश ईश' शब्द डालते रहते हैं। 'गिरीशं', 'परेशं।' ईश माने ईश्वर। ईश्वर माने 'नेति।' तो जो परम बुद्धपुरुष है। अब श्रीहनुमानजी की चर्चा चल रही है जो निराकार शिव इसका वानराकार हनुमान और वानराकार के कई रूप; इसमें एक रूप महावीर। किसी भी वस्तु की कामना-सकामना है अच्छी या बुरी? ज़ंजीर लोहे की या सोने की, लेकिन ज़ंजीर ज़ंजीर है। लेकिन परमतत्त्व की कामना सकाम होते हुए भी परमवंद्य है। हनुमान की कामना क्या है? ये निष्काम है, ये फ़कीर है, ये यति है, यतीन्द्र है। हनुमान वैराग का घनीभूत स्वरूप है। शंकर के रूप में विश्वास का घनीभूत रूप है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

लेकिन श्रीहनुमानजी महाराज की एक सकामता तो है ही जब तक पृथ्वी पर रामकथा चलती रहे, मैं धरती न छोडूं। श्रीहनुमानजी की सकामता है; जानकी का दर्शन करने के बाद कहते हैं, मुझे भूख लगी है। कोई भी भूख, कोई भी प्यास सकामता है। लेकिन माँ के दर्शन के बाद जब भूख लगे वो सकामता वंद्य है, निंद्य नहीं है। बाप और माँ में इतना फ़र्क है। बाप ऐसा पूछेगा, कोलेज हो आया? फेक्टरी ठीक है ना? माँ पूछेगी, खाया कि नहीं? हनुमानजी भूखे हैं। जानकी ने पूछा, तू इतनी लंबी यात्रा करके आया। किसीसे तूने खाना नहीं मांगा और मेरे से क्यों? बोले, माँ, रास्ते में जितने मिले वो खिलानेवाले नहीं थे, सब खानेवाले थे! और लोग तो खाने पर तुले है माँ, तू ही तो माँ है जो तृप्त करती है, जो खाना देती है।

'सुन्दरकांड' में कह दिया, 'तात मधुर फल खाहु।' खाओ लेकिन मधुर करके खाओ। क्या मतलब है? यानी 'रघुपति चरन हृदयँ धरि'; ठाकोरजी को भोग लगाकर ही वस्तु मधुर बनती है। इससे पहले मधुर नहीं होती। ठाकुर को हृदय में धरके खाने से वस्तु मधुर हो जाएगी। फल खाने के बाद तीन काम किए। पहला,

राक्षसों को मारा। दूसरा, जो फल देते थे वो ही वृक्ष को तोड़े। तीसरा, लंका जलाई। समयांतर में किसी ने हनुमानजी को पूछा कि माँ ने तो सिर्फ़ फल खाने को कहा था, बाकी का काम आपने बिना आज्ञा किया? माँ ने तो नहीं कहा था। बोले, ये फल खाने का फल था। जो भक्ति का फल खा जाता है वो मोह का वृक्ष उखाड़ देता है। वो दुर्गुणों का नाश कर देता है और प्रवृत्ति की लंका में आग लगा देता है। ये त्रिभुवन-दर्शन है। बहुत पुराना दर्शन है। एक बार कोई सकाम भक्ति भी अद्‌भुत है साहब! मुझे भूख लगी। मुझे प्यास लगी। 'अखियां हरिदर्शन की प्यासी।' निष्कामता अद्‌भुत है। ध्यान देना, दोनों तराजू में रखकर संवाद कर रहा हूं। फिर मेरा एक प्रश्न, दशरथजी सकाम है कि निष्काम? बिलकुल ठीक है, सकाम है। आज संवाद कर रहा हूं। हम तो संवाद के ही शरण में है। महाराज दशरथ और जनक का संवाद -

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई।

'ये मेरी बेटियों को आपके घर की परिचारिका बनाके इसका पालन करियेगा। ये तो लतायें हैं। ये छोटी-छोटी टहेलियां है।' दशरथ ने पूछा, इन टहेलियों को परिचारिका के रूप में हमें आप दे रहे हैं, इस दारिका को कैसे पालें? कौन-से जल से पालें? 'करुना नई'; नई-नई करुणा के जल से उसको पाले। रोज नई करुणा देना हमारी बेटियों को।

करुणा बहानी होती है। अब देखो निष्कामता का निर्दंभ। 'अपराधु छमिबो बोलि पठए।' क्या अर्थ है? मतलब मेरे अपराध को क्षमा करे। दशरथजी ने कहा, आपने कौन-सा अपराध किया है? बोले, मुझे चारों बेटियों को लेकर अयोध्या देने आना चाहिए। लेकिन आपको यहां बुलवाया। मेरा अपराध माफ़ कर दीजिएगा। आपके बेटे के साथ हमारी कन्याएं कुबूल करें। मैंने बहुत नासमझी की। आपको मैंने दूत भेजा कि दशरथ को बुला लाओ। ये क्या? निष्कामता जब इतनी निर्दंभ हो जाती है तब भक्ति बेटी बन जाती है। निष्कामता जब अपने आपको असमर्थ महसूस करती है कि ये समर्थ है, मैं असमर्थ हूं। मेरे भाई-बहन, भजन करते, कथा सुनते-सुनते, गाते-गाते कितने भी इज्ज़तवालें और समर्थ हो जाओ, लेकिन जब तक असमर्थ नहीं बनोगे, भक्ति नहीं मिलेगी। 'मालिक, मेरे से कुछ नहीं होगा!'

मैं ठीक 'भागवत' में प्रवेश करूं। इजाजत है? कंस के कारागृह में नंद और वासुदेव देवकी को कृष्ण कब मिला? टेल मी। जितने बालक को देवकी ने जन्म दिये, कंस ने मार दिया। हमारे जीवन में क्या होता है? जितने सद्‌गुण पैदा होते है न तुरंत कंसरूपी दुर्गण सद्‌गुण को मार देता है। एक दिन कथा सुनी, एक सद्‌गुण पैदा हुआ। दूसरा बेटा पैदा हुआ। और यहां कंस हाजिर है। द्वेष, पाखंड, कपट ये सब कंसरूपी दुर्गुण छिनछिनकर सद्‌गुणों को खतम करता है। और इतने संतानों की मृत्यु के बाद कृष्ण आता है। ज्ञान का खतरा है अहंकार। जो महापुरुषों को ज्ञान की सच्ची उपलब्धि हो गई है, ज्ञान के समान कुछ पवित्र नहीं है, ज्ञान मुक्तिदाता है। ये सब ठीक है, लेकिन कभी-कभी हम में कहां पूर्ण ज्ञान होता है? इसलिए ज्ञान की परिभाषा करते हुए तुलसी-दर्शन में आया है। 'ग्यान मान जहां एकउ नाही।' जहां एक मात्र भी अहंकार नहीं, न वैराग का, न आसक्ति का, न निष्कामना का। तो बाप, कितने यज्ञ है मेरे 'मानस' में! यहां जनक-यज्ञ, दशरथजी का यज्ञ, विश्वामित्र का यज्ञ। लोग तुलना करते हैं कि द्रौपदी ज्यादा ओजस्विनी है कि जानकी? खबरदार जो बोले तो! जानकी तेजस्विनी नहीं है? अशोकवाटिका में एक अबला बंदी है, दशानन आया ठाठमाठ से।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।

वहां तेजस्विनी जानकी है, रावन! खद्योत के प्रकाश से कभी नलिनी विकसित नहीं होती। सूने आश्रम में मेरा अपहरण करने से हे अधम -

सठ सूनें हरि आनेहिं मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।

कितनी तेजस्विनी है मेरी माँ! लेकिन 'धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि।' तू धरती

से पैदा हुई है, तेरी तेजस्विता द्रौपदी की तरह नहीं होनी चाहिए। द्रौपदी अग्नि से है इसीलिए आग-आग-आग! और द्रौपदी भी शांत होती है बीच में, लेकिन लोग कहते हैं, द्रौपदी की तरह होना चाहिए।

डो. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का निवेदन है कि 'महाभारत' जैसा है उसकी बात करता है, 'रामायण' जैसा होना चाहिए वो बात करता है। जानकी और द्रौपदी यद्यपि महान है, लेकिन निवेदन करने से पहले सोचिएगा, पहले सावधान। तालियां बटोरना आसान है। द्रौपदी कितनी ही महान हो, लेकिन नर की पत्नी है। जानकी नारायण की पत्नी है। यद्यपि नर-नारायण दोनों महान है। अर्जुन नर है, मेरा राम नारायण है। अंतर साफ़ है, फिर भी दोनों महान है। लेकिन आज-कल ऐसा सिलसिला शुरू हुआ है, द्रौपदी आदर्श बने। जानकी की तेजस्विता, ओजस्विता, उनका धैर्य। बोले, द्रौपदी सहन नहीं करती, जानकी बहुत सहन करती है। मातृशक्ति क्यों सहन न करे? आप लाख सहन करने की मना करो, फिर भी आपके जिन्स में सहनशीलता है, जाओगे कहां? मेरा यहां कहना यही है कि बुद्धपुरुष की सकामता भी अद्‌भुत होती है और निष्कामता विनम्र होती है। उसकी सकामता परम की प्राप्ति के लिए होती है और निष्कामता का घमंड उसके जीवन में नहीं दिखता। तो, मेरे भाई-बहन, बुद्धपुरुष का एक लक्षण है महावीर।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

तो, निराकार साकार बनके परमगुरु के रूप में हमारे सामने आता है तो बिलग-बिलग रुचियों को संतुष्ट करने के लिए एक रूप होता है।

पवन तनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।

बुद्धपुरुष का एक रूप है मंगलमूरति। उसका क्या अर्थ करे? नागपुर में 'मंगलमूरति' पर एक कथा हुई। दादा का दिया हुआ 'मंगल' का अर्थ कच्छ की 'रणेश्वर' की कथा में स्लेट में लिख करके बताया था। और ये 'मंगलभवन' का ही सारांश इस कथा में भगवान की इस पवित्र भूमि में लोकार्पित किया जो नीतिनभाई का संपादन है 'मानस-मंगलभवन।' 'मंगलभवन' की कथा में भी कई बातें कही गई। प्रसाद के रूप में बांट दिया।

तो बाप, मेरी ही जिज्ञासा दादाजी के पास हुई थी कि मंगल का अर्थ आप क्या करते हैं? इस निर्दोष देहाती चित्त का अर्थ जो मिला आपके सामने उस कथा में रखा था। मं = मंत्र। अब मंत्र तो कई होते हैं। ॐ नमः शिवाय, गायत्री मंत्र, राममंत्र, शिवमंत्र, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। साबर मंत्र भी आये, ये भी आये। बौद्धों के

मंत्र, जैनों के अपने मंत्र होते हैं। मंत्र का अर्थ तब मुझे बताया गया था कि विचार। 'ग' का अर्थ, जो है गगन। 'मं' माने मंत्रणा। मुझे बताया गया था मंत्र का अर्थ विचार करना। विचार संकीर्ण नहीं होना चाहिए, गगन जैसा विशाल होना चाहिए। संकीर्ण विचार अमंगल है। आज-कल क्या हो गया? हमारे विचार संकीर्ण हो गये हैं। भगवान आदि जगद्गुरु ने विचार संकीर्ण नहीं रखे। पूरे भारत को जोड़ रखा है। समन्वय किया। विशाल विचारधारा। तथाकथित पंथ! पगदंडियां भी दूसरों के खेत में डाली गई और संकीर्णता आ गई! मुझे एक व्यक्ति ने पूछा, अच्छे आदमी को तकलीफ़ क्यों? कंकर को तकलीफ़ नहीं होती है, हीरे को तलाशा जाता है। सोने की कसौटी होती है। मं = मंत्र, विचार, ग = गगन, ल = लक्ष। अपने लक्ष को प्राप्त करने में जिनकी विचारधारा विशाल हो वो है 'मंगल।' मुझे तो आपको इतना ही कहके आगे जाना है कि जिसके गगन जैसे विचार हो; जो सबको लक्ष की ओर पुश करने के लिए अथवा लीड करते हैं वो बुद्धपुरुष है। श्रीहनुमानजी पीछे भी रहते हैं। 'पाछे पवनतनय सिर नावा' और अगवानी भी करते हैं।

तो, नराकार शिव का वानराकार हनुमान, उनके कई रूपों की चर्चा 'मानस' में इस कथा में हम बुद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षण के रूप में विशेषदर्शन करते हैं।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।

तो, 'रुद्राष्टक' के आधार पर हम सब मिलकर बुद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षण की चर्चा कर रहे हैं। कथाक्रम। भरद्वाज ऋषि के सामने याज्ञवल्क्य ने रामकथा पूछने पर रामकथा प्रथम नहीं सुनाई, शिवकथा सुनाई। यही था फिर समन्वय। जिज्ञासा थी राम के बारे में लेकिन आरंभ करते हैं शिवकथा से। 'मानस' का प्रथम खंड जो है वो शिवचरित्र है। उसमें दो चरित है, उमाचरित और शंभुचरित। दक्षयज्ञ में सती जल जाती है। जनम-जनम शिवपद अनुराग की आकांक्षा रखकर देहविलय किया दक्षयज्ञ में। सती उसी कारण दूसरे जन्म में नगाधिराज हिमालय के घर में पुत्री बनकर पार्वती के रूप में प्रकट हुई। बुद्धि जल गई, श्रद्धा प्रकट हुई। बौद्धिकता भी दक्षयज्ञ में जल गई। और अचल श्रद्धा का पर्वत के घर जन्म हुआ। ये तात्त्विक अर्थ जो संतों ने बताया। बेटी का जन्म होते ही हिमालय के घर समृद्धि बढ़ गई। एक दिन त्रिकालज्ञ नारदजी आये। 'गीता' के कथन पर परम विभूति है नारद। मैना और हिमालय ने उनका स्वागत किया। नारद ने कहा, इनके कई नाम है। वो पतिव्रता धर्म की आचार्या होगी। लेकिन हिमालय सुनिए, आप की बेटी को ऐसा पति मिलेगा-

अगुन अमान मातु पितु हीना।

पार्वती समझ गइ कि मुझे शिव ही मिलेंगे। लेकिन माता-पिता नहीं राजी हुए, स्वाभाविक है। पार्वती को तप करने भेजा गया। कठिन तपस्या के बाद पार्वती को वर मिलता है कि आप को शिव प्राप्त होंगे।

सती के जलने के बाद शिव वैरागी बनकर घूमते थे। एक बार नारायण ने शिव से मांग की कि महाराज, सती का ही पार्वती के रूप में जनम हुआ है। आप इन्हें स्वीकार करे। शिवजी ने कहा, महाराज! आप की आज्ञा शिरोधार्य है। ब्याह के समय शिव के शृंगार का गोस्वामीजी ने वर्णन किया-

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा ।

भूत-प्रेतवाली जोगी जमात समेत बारात चली। शिव-पार्वती का विवाह हुआ। फ़िर एक बार शिवजी कैलास में वट के नीचे बैठे हैं तब पार्वती उनके पास बैठती है और रामकथा पूछती है। पार्वती के सामने पहले निराकाररूप प्रस्तुत किया। फ़िर निराकार साकार कैसे होता है उसके पांच कारण बतायें। आख़िरी कारण प्रतापभानुवाला बताया। रामकथा में रामजनम के पहले रावणजनम की कथा आई। रावण ने बहुत अत्याचार किया। धरती कांप गई। गाय का रूप लेकर ऋषिमुनि के पास गई। कहा गया, अब एक ही उपाय है, पितामह ब्रह्मा के पास जाये कि हमें बचायें। ब्रह्मा ने कहा, एक ही उपाय है, हम सब परमात्मा को पुकारे।

अब हम अयोध्या की ओर चले। अयोध्या का सार्वभौम राज। वेद का ज्ञान, उपासना और वेद का कर्मकांड तीनों का समन्वित रूप है दशरथ। कौशल्यादि रानियां है। सब प्रकार से संपन्न है। लेकिन कोई वारिस नहीं है। किसको कहूं? अपनी समस्या जो कहीं भी सुनाने योग्य कोई न रहे तब अपने गुरु के पास चले जाना। समस्या के ताले को खोलनेवाला कोई बुद्धपुरुष है, वहां जाये। पूछते हैं, भगवन्, क्या मेरे भाग्य में पुत्रसुख नहीं है? वशिष्ठ ने कहा, आपको पुत्रकाम यज्ञ करना होगा। शृंगी के आचार्यपद के नीचे पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया। आखिरी आहुति के साथ हाथ में प्रसाद का चरु लिए हुए यज्ञनारायण प्रगट हुए। राजा को कहा, अपनी रानियों में जथाजोग बांट दे। दशरथजी ने रानियों को बुलाकर आधा प्रसाद कौशल्याजी को, पा भाग कैकेयी को और पा भाग के दो भाग करके कैकेयी और कौशल्या के हाथों से सुमित्रा को दिलवाया। रानियां सगर्भा हुई। भगवान गर्भ में आये। ईश्वर अजन्मा है लेकिन परमात्मा सर्वसमर्थ है। और सकाम यज्ञ करने वालों की निष्ठा परम को पाने की हो तो उंरवासी उदरवासी भी बन सकते हैं। जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि, पंचांग अनुकूल हुआ। चराचर में सुख छा गया। त्रेतायुग, चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, भोमवार, मध्याह्न का सूर्य, अभिजित। परमात्मा को आने की बेला है। गर्भ स्तुतियां शुरू हो गई। जिसका पूरे जग में वास है अथवा जिसमें पूरा जगत का वास है वो परमात्मा प्रगट हुए। उजाला-उजाला हो गया! कौशल्या ने देखा कि ये क्या है?

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

मैंने संतों से सुना कि ज्ञान में साधक को उपर उठना होता है लेकिन ईश्वर को साधक अपनी गोद के अनुकूल छोटा बना कर खींच लेता है। भगवान गोद में आ गये। भगवान बालक की तरह माँ के अंक में रोने लगे। ब्रह्म बालक बन गया। हमारा बड़भाग है, ये नये साल की पहली कथा शंकर की नगरी में हो रही है। आप सभी को, समूचे विश्व को, भगवान जगद्गुरु के आशीर्वाद लेकर रामजनम की बधाई हो। बालक के रूप में ठाकोरजी रोने लगे। सभी रानियां संभ्रम दौड़ आई! अनुपम बालक को देखा! महाराज दशरथजी को खबर कर दी, महाराज, लाला भयो है! दशरथ की पहली प्रतिक्रिया, मेरे घर पुत्रजन्म? ब्रह्मानंद का अनुभव हुआ और कहने लगे कि मेरे घर ब्रह्म बालक बनके आया? ये भ्रम है कि ब्रह्म है? लेकिन ये निर्णय तो गुरु ही कर सकता है। गुरु को बुलाओ। बाजेवालों को बुलाओ! बधाईयां करो। फिर एक बार रामजन्म की समूचे विश्व को बधाई हो।

बुद्धपुरुष का एक स्वाभाविक लक्षण महावीर है। महावीर का एक लक्षण वो पूर्ण रूप से निष्काम है, पूर्ण रूप से सकाम भी है। हनुमान की कामना क्या है? ये निष्काम है, ये फ़कीर है, ये यति है, यतीन्द्र है। हनुमान वैराग का घनीभूत स्वरूप है। शंकर के रूप में विश्वास का घनीभूत रूप है। लेकिन श्रीहनुमानजी महाराज की एक सकामता तो है ही जब तक पृथ्वी पर रामकथा चलती रहे, मैं धरती न छोडूं। श्रीहनुमानजी की सकामता है; जानकी का दर्शन करने के बाद कहते हैं, मुझे भूख लगी है। कोई भी भूख, कोई भी प्यास सकामता है। बुद्धपुरुष की सकामता भी अद्भुत होती है और निष्कामता विनम्र होती है। उसकी सकामता परम की प्राप्ति के लिए होती है और निष्कामता का घमंड उसके जीवन में नहीं दिखता।

सत्य आदर्श नहीं है, सत्य यथार्थ है

'रुद्राष्टक' के माध्यम से बुद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षणों का दर्शन करें। इन दर्शन से कहीं अल्लाह करे, हमें अपना दर्शन हो जाये, खुद की जानकारी मिल जाये। बहुत-सी जिज्ञासायें भी है। यथावकाश मैं कोशिश करूंगा। आप प्रशांत और प्रसन्न चित्त से आज की कथा सुने।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

भगवान महादेव निराकार है। इस निराकार का आकार रूप हनुमानजी है। हनुमानजी के भिन्न-भिन्न रूपों की चर्चा बुद्धपुरुष के लक्षण के बारे में हमने गुरुकृपा से आपसे की। इस जगत का मूल क्या है? ये जो पूरा प्रपंच दिखता है, इस प्रपंच के हम भी एक हिस्से हैं। यद्यपि बहुत जंतु जैसे हिस्से हैं। फिर भी युनाईटेड है, संयुक्त है। सबसे जुड़े हुए है। ये जो पूरा प्रपंच है उसका मूल कारण क्या है? ये जगत कैसे बना? यहां पहले क्या था? क्या हुआ? आखिर में क्या होके रहेगा? इसके बीच सूत्र है, 'निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।' न्यायशास्त्र ऐसा कहता है। पहले शास्त्र की बातें कहूं फिर गुरुकृपा से अनुभव भी जोड़ते जायें। शास्त्र बाहर से आते हैं। सहारा लेना पड़ता है भीतर के अनुभव को खरा करने के लिए। लेकिन जो एक बार भीतर खरा हो जाये तो शास्त्र को प्रणाम के साथ एक ओर रखने की बात स्वयं जगद्गुरु शंकराचार्य ने की। परम का ज्ञान हो जाने के बाद शास्त्र की कोई जरूरत नहीं रहती। जो समझता ही नहीं उनके लिए भी कोई शास्त्र की जरूरत नहीं और जो समझ गया उसके लिए भी शास्त्र की कोई जरूरत नहीं रहती। हमारे सनातन धर्म के परम आचार्य जगद्गुरु शंकर ने यह बात रखी है।

हमारी जो स्थिति है उसमें दो वस्तु की जरूरत है। एक वेद की और दूसरी विश्वास की। आप बहुत तीर्थाटन करे, दर्शन करे लेकिन आपको यहां समय भी मिला है थोड़ा तो उस पर आप भी थोड़ा गहराई से चिंतन करे। पहले चाहिए समझ। मैंने अभी कहा कि शंकराचार्य ने कहा था कि समझ आ जाये तो शास्त्र निरर्थक है। शास्त्र में समझ न पड़े तो भी शास्त्र निरर्थक है। तो फिर कथा क्यों? ये नौ दिन का उपक्रम क्यों? इतना खर्च क्यों? ये सब क्यों? ये जरूरी है क्योंकि इससे समझ बनती है। लेकिन समझ पर्याप्त नहीं है। कोई सोचता ही रहे, सोचता ही रहे और सोचते-सोचते कर्म करना भूल जाये तो नतीजा क्या होगा? और कोई रात-दिन कर्म ही करता रहे, कर्म ही करता रहे और चिंतन न करे तो नतीजा क्या होगा? दोनों अधूरे है। पूर्णता होती है सम्यक् समझ से और सम्यक् कर्म स्वीकार से। कथा मुझे और आपको समझ देती है। मैं तो आपको ये भी कहूं कि समझ आने के बाद भी ओर शास्त्र छूट जाये तो छूट जाने देना, कथा मत छोड़ना। क्योंकि हमारी मानी हुई समझ कब धोखा दे कोई ठिकाना नहीं! समझ का मारग क्रिपाणों की धारा है, गिरने में देर नहीं लगती! जो हमारी समझ निरंतर अक्षुण्ण रहे, अभंग रहे तो हममें और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं। कौन ब्रह्म? मेरा नरसिंह महेता समझ गया कि-

ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।

यहां ब्रह्म, ब्रह्म के पास नाच रहा है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मम्।' एक सोने की लगड़ी से रिंग बनाई, हार बनाया, कंगन बनाया। 'जूजवे रूपे अनंत भासे।' लेकिन इस सभी आकारों को मिटा दिया जाये तो नरसिंह महेता कहता है, 'अंते तो हेमनुं हेम होये।' क्योंकि हमारी समझ अखंड नहीं है। एक मिनट में कितनी बार समझ का स्खलन होता है! आप ध्यान करने बैठते हैं तो ध्यान की पांच मिनट में आपका स्खलन कितनी बार होता है! स्खलन मीन्स विकल्प, विकल्प, विकल्प! बीच में कोई तरंग, तरंग, तरंग! एक मख्खी बैठ जाएगी, विकल्प पैदा हो जाएगा! माला गौण हो जाएगी, मख्खी को उड़ाना प्रधान हो जाएगा! स्वाभाविक है। तेज से हवा चली, स्खलन! हां, अखंड समझ हो जाये तो बात और है। हमारी अखंड समझ रहे तो ईश्वर और हममें कहां भेद? लेकिन हमें ये याद रखना है कि तू सिंधु है, मैं तरंग हूं। और तरंगें सागर में विलीन हो जाती है। तरंग समुद्र है। और सगुन लीला का मतलब क्या है? 'भागवतजी' में ये ही लीला का महत्त्व है कि लोगों को एन्जोय कराने के लिए स्वयं सागर तरंग बनता है।

श्री महाप्रभुजी वल्लभाचार्य प्रभु कहते हैं कि परस्पर विरोधी बातों का मेल ब्रह्म है। आपको वल्लभाचार्य का सिद्धांत 'रुद्राष्टक' में बहुत मिलेगा। प्लीज़, आपके पास वैष्णवी आंख हो तो। केवल वैष्णवी तिलक नहीं चलेगा। पूरा वल्लभ विचार। अब तो मैंने कह ही दिया कि पांच कथा कहूंगा 'रुद्राष्टक' पर तो अब आचार्यों को भी बीच में लाउंगा कि कौन आचार्य कहां पर बैठा है? कभी प्रार्थना करके निम्बार्क को लाउंगा। कौन आचार्य नहीं है 'रुद्राष्टक' के? किसने नहीं गाया 'रुद्राष्टक?' इसीलिए मेरा ये निवेदन इस कथा में है, मुझे लगता है, 'रुद्राष्टक' दशों दिशायें गा रही है। यहां संप्रदायभेद नहीं है। यहां जातिभेद नहीं है। यहां वर्णभेद नहीं है। यहां भाषाभेद नहीं है। यहां मतभेद नहीं है। यहां देशभेद नहीं है। यहां कालभेद नहीं है। बार-बार तुलसी गा रहे हैं। वो निर्गुण भी है, सगुण भी है। ये सूक्ष्म में सूक्ष्म है और स्थूल में स्थूल है। और दो दिन से मैं लगा हूं उस पर कि ये भोगी भी है, योगी भी है। निष्काम भी है, परम सकाम भी है। और मैं आपसे निवेदन यह भी करूं कि उज्जैन के महाकाल मंदिर में जहां ये 'रुद्राष्टक' गाया गया, वहां शिव है और वो भुशुंडि का गुरु है। ये दो रूप है। भिन्न नहीं है। ये दो नहीं हैं साहब! ये एक है ये भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि एक लिखो तो फिर दो की कल्पना शुरू हो जाएगी कि एक है तो दो होगा। इसीलिए जगद्गुरु शंकर ने कहा अद्वैत। एक है नहीं, वो दो नहीं है। क्या चिंतन का शिखर छूआ है भारतीय मनीषीओं ने? अद्वैत मतलब एक है, दो है, तीन है, ये नहीं। बस, वो दो नहीं है। उसका अर्थ जो लगाना चाहो आप लगाये। तो, भगवान शिव और वो परम साधु (भुशुंडि का गुरु); शिव निराकार ये साकार, ठीक है? शिव अंदर ये बाहर बैठा है। तत्त्वत: दोनों एक है। फ़र्क इतना है, परस्पर विरोधी धर्म। शिव क्रोध करता है, साधु कृपा करता है 'रुद्राष्टक' गा कर। दोनों एक है। दो है ही नहीं।

मुझे आज ये भी पूछा गया कि सब ब्रह्ममय हैं तो फिर पूजा किसकी करे? जब तक ये समझ अखंड बन जाय नहीं तब तक कोई आधार चाहिए। जो रूप, जो नाम, जो शब्द आपको ठीक लगे। और हमारी पूरी परंपरा में पहले रूप आया ही नहीं, पहले शब्द आया है। रूप शब्द का नौकर है। हम शब्दसेवी है। हम नादसेवी है। हम ब्रह्मनाद के उपासक है। भारतीय मनीषियों ने शब्द को ब्रह्म का पर्याय-सगोत्री कहा। तो ये परस्पर विरोधी धर्म का आश्रय है। ये कराल भी है, ये कृपाल भी है। ये अंदर भी है, ये बाहर भी है। लेकिन ये समझ जब तक अखंड़ न बने तब तक कुछ रखना पड़ेगा। और बिलकुल समझ आ जाएगी तब भी मेरे अनुभव में तो लगता है, छोड़ भी नहीं पायेंगे क्योंकि इसके कारण मुझे समझ आयी है। हम ब्रह्म को नहीं जानते लेकिन ब्रह्म नहीं जानता कि ये जीव भी ब्रह्म है? हमारी मूढ़ता है। 'शिवोऽहम्' बोलते हैं लेकिन हमारा अनुभव तो नहीं! लेकिन परमात्मा तो जानते हैं, तू भी वो है फिर भी क्यों आता है? साहब! भारतरत्न मर्हूम बिस्मिल्लाखांसाहब; शहनाई तो फूंक से बजती है। ऐसे ही फूंक मारो, बजेगी? शहनाई बीच में चाहिए, तभी संगीत प्रगट होता है। कोई आधार चाहिए। और ये आधार इतना आपका स्वाभाविक हो जाएगा। इसलिए लोग ब्रह्म की प्राप्ति के बाद गुरु को क्यों नहीं छोड़ते? क्योंकि लोगों को पता लग गया कि मेरा लक्ष्य ब्रह्म नहीं था, मेरा लक्ष्य तो मेरा गुरु था। मुझे जहां पहुंचना था वहां पहुंच गया। मैं उसको कैसे छोडूं? ये हका ऐसे उंगलियां घूमाता रहे, ऐसे-ऐसे करता रहे पर हामोर्नियम उपकरण के रूप में चाहिए। मुझे पोथी, पादुका चाहिए। फिर एक आदत-सी हो जाएगी कि परम के अनुभव के बाद भी आप उसको छोड़ नही पाओगे। छोड़ सकते हैं, छूट भी जाये, तो होने दो। जबरदस्ती न करे।

मैं आपसे प्रार्थना करूं कि अध्यात्ममार्गवालों को किसीकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। माला गलत है, मूर्ति गलत है, ये कथा गलत है! ऐसी आलोचना न करे। आलोचना गति रोकती है। हां, समझ देने के कारण जो बहुत ममता के पात्र हो गये हो तो उसके सामने क्षीर-नीर जरूर कहे कि भाई, ये पानी है, ये दूध है, जरा ध्यान रखना। लेकिन उसके पीछे द्वेष न हो। मैं फिर एक बार कहूं, निंदा न हो, निदान जरूर हो। डोक्टर कहे, तुने गलत खाया, ये तुम निंदा मानोगे? हमारी दृष्टि में ये डोक्टर का निदान है। ये जरूरी है। तो बाप! अखंड समझ हो जाये तो बात ओर है।

आज किसीने पूछा है बापू, गोल-गोल जवाब मत देना! मेरी बिल्ली और मुझ से म्याउं! प्रश्न पूछा है, 'गोपीभाव में पहुंचने के लिए क्या करना पड़ेगा? एकदम सीधा-सपाट बताइयेगा, गोल-गोल घूमाइयेगा मत।' मैं घूमाता नहीं, दवा हिला के देता हूं। तो कुछ भी करोगे, हमारा किया हुआ होगा और हमारी सीमायें है। यह अधूरा ही होगा। होने दो। करेंगे तो हम। आखिर हमारी सीमा होगी। चलो, पूरा कर लो तो एक दूसरी सीमा आ जाएगी कि मैंने किया, मैंने किया! ये प्रोब्लेम आ जाएगा। और मैंने किया, मैंने किया ये करने के बाद आये तो फिर नरसिंह महेता कहते हैं कि ये ही परम मूढ़ता का परिचय है! किसी अवस्था-विशेष को प्राप्त करने के लिए कर्म नहीं चाहिए। उनका करम चाहिए, रेहमत चाहिए।

मेरा एक सूत्र है, देहशत से कुछ नहीं होता। मेहनत से कुछ-कुछ होता है। रेहमत से सबकुछ होता है। इसलिए शरणागति के मार्ग को पकड़कर पलांठी लगाकर बैठ गये हैं। क्या करेंगे? हमारी औकात क्या है? एक जगह बैठ जाना। किया तो कर्तृत्व आयेगा। सफलता आयी तो अहंता आयेगी। फिर मैने किया, मैने किया! तो फिर ममता आयेगी। कोई वस्तु क्या, सूत्रों में भी स्पर्धा चल रही है! कई लोग कहते हैं, हमारे गुरु ने कहा, 'भजन करो, भोजन करवाओ।' अल्या, तारा गुरुए क्यारे कीधुं? मैंने एक नोटबूक में चालीस-पैंतालीस साल पहले ये सूत्र लिखकर दिया था। उसकी कोपी भी मुझे बताई गई। सब लिख रहे हैं! हमारे गुरु कहते थे, 'भोजन करवाओ, भजन करो!' चोरी चल रही है! सूत्र तो सबके है लेकिन ऐसा उधार नाम कमाना आध्यात्मिक स्खलन है। थोड़ी भूल हो जाये तो भी करो। रेहमत को मौका तो दो बरसने का। हम मौका ही नही देते! रेहमत चाहती है कि कोई थोड़ी खता करे, तो मैं उसे नहला दूं। और हम! हम ये, हम अच्छे, हम सदाचारी! तुने माला ले ली तो सदाचारी हो गया? रेहमत तरसती है और रेहमत बेचारी चुपचाप खड़ी रहती है, मेरी कितनी ईच्छा थी कि मैं तुम्हें नहला दूं करुणा से लेकिन तुने खता ही नहीं की! सदाचार, सदाचार! मेरे पास तेरी कुछ कमियां हो तो लेके आ बेटे, रेहमत का अनुभव करा दूं। आखिरी शब्द तुलसी कहते हैं, 'मतिमंद तुलसीदास...' हम कमियों से भरे हैं, फिर भी हम दावा करते हैं कि हम ठीक है!

हमारे हरि अवगुण चित्त ना धरो...

ये सुर का पद है लेकिन सुर को भी इतने साल हो गये हैं। थोड़ा संशोधन जरूरी है। आंखें खोलो, अब तो यही कहना चाहिए कि-

हमारे हरि अवगुण चित्त में धरो...

तुम्हें पीड़ा होगी कि मेरे आश्रित में ये बुराईयां है तो तू धोये बिना नहीं रह पायेगा। और हमने तो पहले से 'चित्त न धरो, चित्त न धरो!' कहा! बदलो, बदलो; आंखें खोलो। दूसरा सूत्र अच्छा है। ये कभी बदलनेवाला सूत्र नहीं है-

समदरशी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो...

तू समदरशी है। थोड़ा पक्षपाती हो जा दाता! हमें औषधि की बहुत जरूरत है। तेरा समदरशीपना ज्ञान में रख। हम तो कह देंगे कि 'चाहे तो पार करो।' लोग कहते हैं, हम में ये कमी है! एक भाई का प्रश्न है कि बापू, हम रोज सत्य बोलते हैं लेकिन कल भोजन की लाईन में थोड़ा असत्य बोल दिया! इसमें क्या हो गया? अपने को कोसने की क्या जरूरत है? छोटे-से असत्य की इतनी ताकत? डरो मत। क्रोध आ गया तो आ गया! एक वस्तु समझ लो कि असत्य के मारग से ही सत्यलोक में जाया सकता है, 'असतो मा सद्गमय।' इसी शृंखला में मुझे पूछा कि बापू, मैं असत्य बोला। कहीं लाईन में खड़ा होगा। कारीगीरी की होगी! फिर उसने लिखा कि आपकी कथा सुन-सुनकर मैंने सत्य को आदर्श बनाया। भोजन के कारण मैं थोड़ा झूठ बोला! उसने लिखा, 'कथा सुनते-सुनते मैंने सत्य को आदर्श बनाया।' सत्य आदर्श नहीं है। वहां मूल में भूल कर रहे हो। सत्य आदर्श नहीं है! सत्य यथार्थ है। आदर्श तो उपर से थोपा जाता है। सत्य कायम

है, काल अबाधित है। हम नहीं थे तब भी था, हम है तब भी है, हम नहीं होंगे तब भी होगा। सत्य को आदर्श मत बनाओ। प्रेम को आदर्श मत बनाना। करुणा को भी आदर्श मत बनाना। ये आदर्श नहीं है, जीवन का यथार्थ है। और आदर्श के रूप में ये न करे, ये न करे! आदमी वो ही करता है! खबर नहीं, गजब है! सत्य आदर्श नहीं है। प्रेम आदर्श नहीं है। करुणा आदर्श नहीं है। आदर्श तो बदलते रहते हैं। नीति-नियम बदलते रहते हैं। बहुत-सी बातें इधर-उधर होती रहती है। सत्य नहीं बदलता। हमारे पास यद्यपि कोई उपाय नहीं है तो कहना पड़ता है कि सूरज जैसा सत्य। हम ये भी जानते हैं कि सूरज के समान सत्य कहे, पर सत्य सूरज के समान नहीं है। क्योंकि सूरज भी कालान्तर में बदल जाएगा। विज्ञान कहता है कि सूरज भी बूझ जायेगा। सत्य रहेगा। चूक नहीं करे हम और आप लेकिन हो जाये, आदमी है; हो गई जाने-अनजाने में तो रेहमत को मौका दो। तो इस अवस्था को पाने के लिए क्या करना चाहिए? कुछ करना तो सीमा है। करना है तो एक काम करो, प्रतीक्षा करो।

आवशे, ए आवशे, ए आवशे, ए आवशे।
तुं प्रतीक्षामां अगर शबरीपणुं जो लावशे।

-कृष्ण दवे

व्यासपीठ के करीब मतलब दिल के करीब रहने की शर्त और किंमत क्या है? दिल के करीब रहना मीन्स प्रेम में रहना, मोहब्बत में रहना। मोहब्बत की कोई शर्त नहीं होती। मोहब्बत का कोई मूल्य नहीं। सत्य तिनका है। सत्य के कारण छः वस्तु को तिनके की तरह तोड़ना पड़ेगा लेकिन प्रेम करोगे तो छः वस्तु फूल की तरह परम के चरणों में समर्पित करनी पड़ेगी।

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी।
सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी।।

सत्य के लिए तन, तिय (स्त्री) तनय, धाम (स्थान के प्रति लगाव), धन (संपदा), धरती तिनके की तरह छोड़नी पड़ेगी। दो तीन-दिन पहले मैंने ये आपको बातचीत के रूप में रखा तब मैंने एक दृष्टांत के रूप में गांधीबापू को बीच में रखा कि सत्य का उपासक; याद रखना, गांधीबापू मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। उनके सत्य के बारे में कोई प्रश्न ही नहीं उठा सकता। लेकिन गांधीबापू की हर एक वस्तु मुरारिबापू को अनुकूल नहीं पड़ रही। ये मेरी सविनय असंमति गांधीबापू भी कबूल करेंगे।

प्रेम जीवन का यथार्थ बनता है, आदर्श नहीं। प्रेम को तिनके की तरह कुछ तोड़ना नहीं होता। प्रेम बड़ा नाजुक है। प्रेम का एक फूल है जो अस्तित्व के चरणों में चढ़ाना होता है। जो प्रेमी होता है, ये शरीर को फूल समझके पूरा देह परमात्मा को समर्पित करता है। सत्य में गांधीबापू को रखा। प्रेम में भगवान चैतन्य को रखूंगा। प्रेम के कारण चैतन्य ने देह के फूल को भगवन् जगन्नाथ को अर्पण कर दिया। कहते हैं, ये नीलांबर का आदमी नील वर्ण सागर को देखता था तो 'हरि बोल' करके अपनी काया समंदर में डाल देते थे! फिर कोई न कोई उसको निकाल देते थे! शरीर को फूल की तरह पूरे अस्तित्व को जगन्नाथ समझके अर्पित किया! तिय; विष्णुप्रिया; मैंने कभी ये बातें आपको सुनाई थी। चैतन्य की, गौरांग की प्रेमकथा अद्भुत थी! विष्णुप्रिया को जब छोड़ने की बात आयी। लेकिन ये प्रेम जिसका यथार्थ था इसलिए तियवाला पुष्प भी अस्तित्व के चरणों में रख लिया था। तनय; हर एक वस्तु से ममता को बटोर ली; प्रत्याहार कर लिया था। केवल एक ही ममता, प्रेम। 'तनु, तिय, तनय, धाम।' अपना वो प्रदेश, स्थान छोड़ा। अब एक मात्र धाम था श्री वृंदावनधाम। वहां की ओर चल पड़े। ऐसा एक अद्भुत प्रेमी आया इस भारत की धरा पर जिसको हमने प्रेमाद्वैत, प्रेमावतार कहा। ममता बटोर ली। और सब से बड़ी ममता माँ की होती है। धन; धन का तो सवाल ही नहीं। इसी प्रेमस्थिति में एकमात्र धन जिसका हरिनाम है। जगत का धन 'श्रीमद् भागवत'जी में तो आता है। अर्थ में पंद्रह अनर्थ निवास करते हैं। ये धन भी एक फूल है लेकिन ये मेरे लिए नहीं, मेरी शोभा के लिए नहीं, मेरे जगन्नाथ की शोभा के लिए ये फूल समर्पित है। धरनी; आदमी धरणी से उपर उठ गया था। एक ऊंचाई पकड़ ली थी। सभी आधार को उसने फूल की तरह जगन्नाथ के चरणों में चढ़ा दिये थे क्योंकि उनके जीवन का प्रेम आदर्श नहीं था, यथार्थ था। और करुणा; करुणा को मैं एक प्रवाह कहता हूं। करुणा द्रव है। करुणा जिसके जीवन में यथार्थ है उसको करुणा बहानी चाहिए। हम भारतीय मनीषियों ने करुणा का एक प्रतीक खोजा है उसका नाम है आंसू। कहीं न कहीं

प्रतीक-रूपक खोजना पड़ता है। करुणा का प्रतीक है अश्रु और अश्रु का स्वभाव है बहना।

मुझे लगता है उपर से कोई देखे तो यशोधरा का त्याग है ये करुणा है या कठोरपन? उपर से देखे तो कठोरपन भी लगता है। यद्यपि यशोधरा को कठोरपन लगा ही है। टागोर ने तो खुलकर चर्चा की है। बुद्ध को टागोर बुद्धदेव कहा करते थे। करुणा बहती है तो हम समझ नहीं पाते। शरीर से यशोधरा के साथ न गये लेकिन बुद्ध एक बार बोले हैं टागोर की भाषा में कि जब यशोधरा ने पूछा, 'आप करुणामूर्ति है, आप को कभी मेरी याद आती है?' पंचभौतिक शरीर का मन ऐसा प्रश्न पूछने का अधिकारी है। बहुत करुणा से भरा ये प्रश्न था। 'तथागत, हम तो आपके साथ मानसिक रूप से लगे रहे, लेकिन आपको कभी मेरी याद आयी?' बुद्ध जवाब देते हैं कि एक बार मैं नौका में बैठा था और पूर्णिमा की रात थी। जल प्रवाह में चंद्र का प्रतिबिंब मैंने देखा और मेरे मन में उतरा, एकदम तुम्हारी याद आयी। बुद्धपुरुष को किसी की याद आये ये बुद्धत्व का कोई स्खलन नहीं है, करुणा है; होनी चाहिए। बुद्ध कहते हैं कि यशोधरा, पूर्णिमा का चांद देखके आपकी याद आयी। और साहब, बुद्धपुरुष इतना याद करे तो तो काम हो जाता है! इतने में तो घटना घट जाती है। हम को माला लेनी पड़ती है, बुद्धपुरुष को माला नहीं लेनी पड़ती। उसकी स्मृति, उसके चित्त में बात आ गई, बात खतम! तो करुणा बहे, बुद्ध की करुणा इस तरह बही। दिखने में तो राहुल को छोड़ दिया ये कठोर लगता है। लेकिन ये घटना न घटती तो हो सकता है राहुल राजा हो जाता और फिर वैभव में फंस जाता। लेकिन करुणा ऐसी बही कि जब राहुल से बुलवाया गया कि तेरे पिता से तू संपदा मांग, तब बुद्ध ने भिक्षापात्र दे दिया था। ये ही तो करुणा थी! बुद्ध ने भी करुणा का प्रवाह बहाया इन छ वस्तु में ऐसा मेरा मानना था। लेकिन मूल बात ये समझों कि आप सत्य को आदर्श मानते हैं; प्लीज़, सत्य को आदर्श मत मानना। सत्य त्रिकाल अबाधित है, यथार्थ है, शाश्वत है। प्रेम यथार्थ है। करुणा यथार्थ है। दो वस्तु की जरूरत है, समझ चाहिए और विश्वास चाहिए। विवेक और विश्वास चाहिए। केवल विवेक हो और विश्वास न हो तो घटना नहीं घटती। बुद्धि-विवेक से समझ आती है। विश्वास से स्वीकार आता है।

हमारी बात ये रही कि इस सृष्टि का मूल क्या है? ये सृष्टि कैसे बनी? पंचतत्त्व है; पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, तेज। और मैं आपसे बात करूं कि इन पांच तत्त्व में सबसे बड़ा तत्त्व कौन है? आकाश; बिलकुल ठीक है? तर्कशास्त्र ये कहता है कि आकाश का गुण शब्द है। तो आकाश पहले हुआ कि शब्द से आकाश हुआ? यहां 'रुद्राष्टक' में बुद्धपुरुष कहते हैं कि समग्र सृष्टि का मूल तत्त्व ॐकार है। मेरी अपनी अदा से मैं यहां कहूंगा कि राँ (राम) है। और तुलसी ने अपनी अदा से 'अरण्यकांड' में समस्त धर्मों का मूल शंकर को प्रतिपादित कर दिया, शिव ॐकार-स्वरूप है। तो बाप! गोस्वामीजी कहते हैं 'निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।' यहां जो मूल तत्त्व को जान लेता है वो बुद्धपुरुष है। तुरीयं; फिर वो गुणों से रहित है (निर्गुण) है आदि-आदि।

गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।

हे महादेव, हे परमगुरु, हे त्रिभुवन गुरु, तू गिरा, ज्ञान और गुण से पर है। ब्रह्मतत्त्व गुणों से पर है इसलिए इन्हें 'नेति' कहना पड़ता है। इन्द्रियों से पर और ज्ञान से भी पर। आखिर में तीनों से पर है। वहां पहुंचा नहीं जाता। तो, भगवान शिव गिराज्ञान गोतीत है, गिरीश है, कैलासपति है। अब ये लक्षण बुद्धपुरुष के भी हो गये। सही में जो बुद्धपुरुष है उन्हें हम अपनी वाणी से नाप नहीं सकते। ये वाणी से पर है। नहीं बांध सकते हम शब्दों में। वाणी की सीमा है। बुद्धपुरुष वाणी से पर है। वहां मौन हो जाना पड़ता है। जिसके पास जाके जितनी मात्रा में हम मौन हो जाते हैं, स्वाभाविक समझ लेना, आदमी इतना पहुंचा हुआ है। गिरा से पर, ज्ञान से पर, हमारी समझ से कई आगे बुद्धपुरुष होता है। उनकी उर्जा सह्य नहीं होती, इसलिए वो डिस्टन्स बनाये रखता है। बुद्धपुरुष समझ से बाहर है। कुछ-कुछ इनके निर्णय समझ के बाहर होते हैं। वचन समझ के पर होते हैं। 'रामचरित मानस' में लिखा है-

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।

बुद्धि से भी पर, वाणी से भी पर। 'गिरा ज्ञान गोतीत' क्योंकि ये तत्त्व ही गो पार है, इन्द्रियों से पर है। पूर्ण मात्रा में इन्द्रियां उसे पकड़ नहीं सकती। बुद्धतत्त्व ज्ञान गिरा गोतीत है। बुद्धतत्त्व गिरीश, कैलासपति है। यहां कैलास का नाम है। 'हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा।' अचलता का संकेत है।

मेरु रे डगे पण जेना मनडां डगे नहीं ...

अचलता, स्थैर्य। वो हमारी तरह चंचल नहीं होते। जिसमें रजोगुण ज्यादा है वो एक जगह बैठ नहीं पायेगा। रजोगुणी बैठ नहीं पाता। प्रमादी तमोगुणी है। प्रमाद मृत्यु का सगोत्री है। सत्त्वगुणी सम्यक् होता है। जब कर्म में प्रवृत्त होना है, कर्म करता है। जब उठना है, उठ जाता है। बैठना है तब बैठ जाता है। बुद्धपुरुष स्थिर है, शांत है। भीतर से भी शांत है, ये बुद्धपुरुष का लक्षण है। गिरीश की तरह शान्त। 'करालं'; बहुत कराल है लेकिन मैंने शुरूआत में कहा कि परस्पर विरोधी धर्मों का समन्वय है। इतने कराल है। और आखिर कहते हैं, इतने ही कृपालु है। काल है और महाकाल के भी काल है। 'करालं महाकाल कालं' गुरुओं के बारे में लिखा है, गुरु मृत्यु है। गुरु जल है। गुरु कंवल का फूल है। गुरु औषधि है। तो भगवान शिव और बुद्धपुरुष की बात हो रही है। वो काल के भी काल है।

कज़ां को रोक देती है दुआ रोशन ज़मीरों की।
भला मंजूर है अपना तो कर खिदमत फ़कीरों की।

बुद्धपुरुष में ये सामर्थ्य होता है, लेकिन बुद्धपुरुष भी परमात्मा की जो नियति होती है उसका सन्मान करता है। चाहे तो कुछ भी कर सकता है। लेकिन नियति का सन्मान करना भी वो अपना दायित्व समझ लेता है। बाप! वो कराल भी है, कृपालु भी है। गुण का धाम, आगार, मंदिर है और बुद्धपुरुष 'सकल गुण निधानं'; समस्त गुणों का धाम है बुद्धपुरुष। 'गुणागार संसार पारं'; रजोगुण हो, सत्त्वगुण हो, तमोगुण हो अथवा सभी गुणों का आगार हो। जब तक गुण है तब तक संसार है। गुणागार का मतलब है प्रपंच है लेकिन फिर तुरंत 'संसार पारं' विरोधी धर्म आया। लगता है वो समस्त गुणों का निर्वाह करता है। गुण का संस्कृत में मतलब है रस्सी। ये बंधन है लेकिन 'संसार पारं।' कई महापुरुष ऐसे होते हैं। लगता है वो संसार में है और बहुत विवेकदृष्टि से हम उनका सूक्ष्म दर्शन करे तो लगता है 'संसार पारं।' ये बात करता है तो हमें खुश करने के लिए, ये खाता है तो हमको खुश करने के लिए।

तो 'मानस-रुद्राष्टक' में कल हमने रामजनम का उत्सव मनाया। फिर चार भाईओं की प्राप्ति हुई। नामकरण संस्कार हुआ। कुमार अवस्था में यज्ञोपवित संस्कार हुआ और गुरु के पास जाकर पढ़ने गये। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त कर ली। महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञरक्षा के लिए दशरथ से पुत्रों की मांग की। भारत का सद्गुरु संपत्ति नहीं, संतति मांगता है। राजा ने पुत्रो दिये हैं। प्रभु के अवतारकार्य का श्रीगणेश हुआ। ताडका को निर्वाण दिया। यज्ञरक्षा की। विश्वामित्र ने कहा कि मिथिला में धनुषयज्ञ होनेवाला है। रास्ते में प्रतीक्षा यज्ञ है। आप चलें। प्रभु पदयात्रा करते हैं। भगवान ने गौतमनारी को पुनः चैतन्य प्रदान किया। विश्वामित्र से गंगा अवतरण की कथा सुनी। गंगा हमारा परिचय है। भगवान जनकपुर आये। राम के रूप से जनक आकर्षित हुए। विश्वामित्र से पूछते हैं, ये कौन है? मेरा मन क्यों चकोर की भांति चंद्र में लगा हुआ है? विश्वामित्र ने परिचय दिया। 'सुंदरसदन' में निवास दिया। दोपहर को सबने भोजन किया और विश्राम किया। आप भी भोजन करो और विश्राम करना।

एक भाई का प्रश्न है कि बापू, हम रोज सत्य बोलते हैं लेकिन कल भोजन की लाईन में थोड़ा असत्य बोल दिया! फिर उसने लिखा कि आपकी कथा सुन-सुनकर मैंने सत्य को आदर्श बनाया। भोजन के कारण मैं थोड़ा झूठ बोला! सत्य आदर्श नहीं है, वहां मूल में भूल कर रहे हो। सत्य आदर्श नहीं है! सत्य यथार्थ है। आदर्श तो उपर से थोपा जाता है। सत्य कायम है, काल अबाधित है। हम नहीं थे तब भी था, हम है तब भी है, हम नहीं होंगे तब भी होगा। सत्य को आदर्श मत बनाओ। प्रेम को आदर्श मत बनाना। करुणा को भी आदर्श मत बनाना। ये आदर्श नहीं है, जीवन का यथार्थ है।

अध्यात्मजगत का पाटनगर हिमालय है और उसकी राजधानी है कैलास

इस कथा का केन्द्रबिंदु है बुद्धपुरुष के स्वाभाविक लक्षणों का विशेष दर्शन। आईये, यात्रा करें आगे। 'रुद्राष्टक' में बुद्धपुरुष उज्जैन के मंदिर में गा रहा है और क्रोध आ गया था ऐसे महादेव को अपने आश्रित पर कृपा करने के लिए गद्‌गद् स्वर में 'रुद्राष्टक' गा रहा है। हे महादेव! सोच, तू कैसा है, फिर क्रोध कर, फिर श्राप दे। तू स्वतंत्र है दाता! लेकिन स्वरूप का बोध तुम्हें भी होना चाहिए। तेरा स्वरूप क्या है? 'तृषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं।' संकाश माने सदृश। आपका स्वरूप शुभ्र हिमालय की तरह गौर, गंभीर है। बुद्धपुरुष के तीन सूत्र। हिमालय धवल है। एक बात बीच में कह दूं कि पूरे अस्तित्व के अध्यात्म का पाटनगर हिमालय है और उसकी राजधानी कैलास है ये मत भूलना। समूचे अस्तित्व का अध्यात्म, केवल भारत का नहीं।

आज भी कहते हैं कि निरंतर पांच सौ सिद्धपुरुष कैलास पर निवास करते हैं। इनमें से एक स्वेच्छा से निर्वाण को स्वीकारता है तब दूसरे बुद्धपुरुष को वहां प्रवेश प्राप्त होता है। पूरे साल की कुछ पूर्णिमा में वहां बुद्धपुरुष का जमेला होता है। मेरे जानने, मानने में तीन पूर्णिमा में वहां संमेलन होता है-बुद्धपूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा और शरदपूर्णिमा (वाल्मीकि जयंती।) ये सिद्ध-शुद्ध-बुद्ध चेतनायें वहां इकठ्ठी होती है। ऐसा जो कैलास है, जो अध्यात्मजगत का पाटनगर है। शिव को ये बुद्धपुरुष कहना चाहता है कि हिमालय स्थिर है। हे महादेव! मेरे चेले ने थोड़ा गुनाह कर दिया, तू विचलित हो गया! अरे! सोच, ये तो नासमझ बच्चा है। कहा तो ये जाता है कि तू सबको कहता है कि मैं इस दुर्बुद्धि को आदिकाल से पृथ्वी पर रहने देता हूं। तो गुरु तू क्यों उसे डांटता है? आज मैं तुम्हें कह रहा हूं, मै उसको तेरी शरण में रखता हूं तो महादेव, तू क्यों उसको धक्का देता है? देखो, गुरु कितनी वकालत करता है एक आश्रित के लिए? तू चलित हो जाये? तू धवल हिमालय है। तू कैलास है। तेरी अपनी कुछ महिमा है महादेव।

आईये, हम और आप पहाड़ की कुछ महिमा समझने की कोशिश करें। पर्वत उसको कहते हैं, जिसको अपनी निजी कुछ ऊंचाई होती है। गिरिराज वैसे फैला हुआ है गोवर्धन, फिर भी उसकी अपनी ऊंचाई है। गिरनार की भी अपनी ऊंचाई है। चित्रकूट की अपनी ऊंचाई है। पहाड़ का एक लक्षण है, ऊंचाई होती है लेकिन ये ऊंचाई खोखली नहीं है। ये ऊंचाई बरकरार रखते हुए पिघलता है। जो खीण में है, जो तलेटी में है, जो शरण में है, इन पर वो बहता है। कृपा के रूप में, करुणा के रूप में बहता है। एक तो उनकी अपनी एक ऊंचाए है। महादेव, आपकी भी अपनी ऊंचाई है। दूसरा, पर्वत वो है 'मानस' में लिखा है -

बडे सनेह लघुन्ह पर करही।

इतनी ऊंचाई होते हुए एक घास के तिनके को अपने सर के उपर रखता है। जैसे कि समंदर इतना विशाल, फिर भी उनके जो फीण होते हैं वो उपर रखता है। महादेव, तुम्हारा कर्तव्य तो ये है कि छोटे से छोटे आदमी को सिर पर रखे। तुने वक्रचंद्र को यदि रखा है; तुने तूफानी गंगा को भी संभाली है। वो भी कोई शालीन नहीं है, तूफान करती आयी है। तो मेरे चेले ने क्या गुनाह किया है? तुझे समझ नहीं पाया मगर तेरे मंदिर में तो बैठा है। तेरे करीब आया है और पर्वत के उपर तो कंकर भी होते हैं, शीला भी होती है। ये धोखा है। पर्वत तो उसको भी कहते हैं कि कोई इसकी गहराई खोदे तो अंदर से हीरा भी निकलता है। तू हमें धोखे में रखता है कि मेरे पास कुछ नहीं, कंकर है! लेकिन तेरे गर्भ में तो हीरे-मोती है। तू ऐसा खजाना है। तेरी अचलता के कारण लोग तुम्हारी परिक्रमा करते हैं और तुम सामान्य पर्वत नहीं हो महादेव! सामान्य पहाड़ के चार दोष है, वो हिमालय में नहीं है। मलिनता, स्थावरता, जड़ता और भयानकता। कोई भी पहाड़ मलिन होगा। पहाड़ पर चढनेवालें प्लास्टिक की थेली डालेंगे! कुछ ऐसे मलिन होगा।

क्या ईरादा है भुशुंडि के गुरु का? दाता, तू सोच, तू दूसरे पहाड़ों से बिलग है। तेरा गोत्र बिलग है। बुद्धपुरुष असीम होता है। दाता, तू ओर पहाड़ों की तरह मलिन नहीं है। तू धवल है, तू उज्ज्वल है, तू उदार है। बुद्धपुरुष मलिन नहीं होता। वो भी आंतर्-बाह्य उज्ज्वल होता है। क्यों हमारा आकर्षण बुद्धपुरुष के प्रति है? नीतिनभाई कहते हैं कि -

रोज एने द्वार दोडी जाउं छुं।
तीर सामे जइ अने विंधाउं छुं।

जो मुझे विंध रहा है उसी तीर के सामने मैं बार-बार क्यों जाता हूं? बड़ा प्यारा सूत्र है ये। कविता तो है ही। मेरी दृष्टि में ये समस्त बुद्धपुरुष के लक्षणों का ये सूत्र है। हम क्यों भागे जा रहे हैं? मैं क्यों बार-बार पघड़ी को याद करता हूं? बुद्धपुरुष डांटे तो भी रह नहीं सकते! दाता, तू आंतर-बाह्य धवल है।

हमारी आंख कमजोर है ये हमारी कमी है। वर्षा होती है वो पानी स्वच्छ होता है। बस, ये जमीन से स्पर्शित हो इससे पहले पात्र में भर लो वर्ना डाबर होने में देर नहीं लगती! वैसे बुद्धपुरुष के बचन ऐसे ही पकड़ लो, थोड़ा भी जमीन को छूआ तो डाबर हो जाता है। इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा कि अपने पात्र को शुद्ध रखो। डाबर हुआ है कि हम उसे झिल न पाये! बाप! जैसे श्रीमद् राजचंद्र ने कभी मांगा था, परमात्मा, मुझे तू नहीं चाहिए। तेरी परीक्षा से जो पास हुआ हो और तू जिससे मोहब्बत करता हो वैसे बुद्धपुरुष से मेरी मोहब्बत हो जाये।

तमाम उम्र इस सोच में मैं हंस नहीं पाया।
वो मुझको छोड़कर कितना रोया होगा?

हम नहीं पहचान पाये! मुझे लगता है कि हम जैसे मानवी की कोई चूक हुई हो इस मानव जीवन में तो हम पहचान न पाये। कृष्ण को कृष्णकाल में कितने लोग पहचान पाये? नहीं समझ पाये! इसलिए नरसिंह महेता की ये पंक्ति मुझे बहुत अच्छी लगती है-

अमे अपराधी कांई न समज्या,
न ओळख्या भगवंतने...
जळ कमळ छांडी जाने बाळा...

और समझ आती है तो बहुत देर हो जाती है। ये कलियुग के समान कोई काल नहीं है साहब! किसी काल में ऐसी कथायें होती होगी? अल्लाह जाने! जहां देखो, हजारों लोग कथा सुनते हैं। ऐसा पवित्र समय कहां है? हम चुक जाते हैं! कथा सुनने का एक विज्ञान है। जिसको मेरी व्यासपीठ श्रवण विज्ञान कहती है। बाप! दादा ने मुझे कहा था कि 'बेटा, अवसर आये तो बोलना। मैं तो नहीं बोला हूं। देहातियों के पास 'महाभारत' गाया, 'रामायण' तो अकबंध रखा था। मैंने तुझे दे दिया पूरा का पूरा। अवसर मिले तो बोलना लेकिन समझना बहुत।' समझने के लिए चाहिए एक श्रवण विज्ञान। पानी बरसता भी है चलो, बरसता है और वर्षाऋतु का समय नहीं है इसीलिए जमीन को छूने के बाद भी मानो डाबर नहीं होता है। क्योंकि शरद का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि शरद ऋतु आई तो सब पानी निर्मल हो गया। लेकिन शरद में जल निर्मल तो रहता है लेकिन बह जाता है, ठहरता नहीं। ठहरने के लिए संगेमरमरी फ़र्श चाहिए। एक ऐसा सरोवर जिसमें बिलकुल स्वच्छ फर्श पर पानी संग्रहित हो और वो सरोवर है 'हृदय अगाधू।' सुमति से कथा सुनना। दुर्भाव से कथा सुनी तो पवित्र से पवित्र वचनामृत भी डाबर हो जाता है। हमारे पैर नीचे है, मस्तक उपर है इसलिए पूरे बोडी-अंग उपांगों में हमारा मस्तिष्क श्रेष्ठ माना गया है। और हमारे मस्तक में बुद्धि है। पानी पीते हैं तो प्यास मिटती है। पानी से हम नहाते

हैं तो शरीर शुद्ध होता है। जो पानी हमारा जीवन है वो ही पानी में रोग के जंतु भी है। हमारी बुद्धि इतनी ऊंची है उसमें भी रोग के जंतु भी है। तुलसी का आग्रह है, 'सुमति भूमिथल।' बुद्धि अच्छी है। टेक्नोलोजी से आज का सायन्स, कितनी बुद्धि की उडान है लेकिन महात्मा गांधी ने कहा है, संवेदनशून्य विज्ञान पाप है। हमारी बुद्धि ग्राह्य नहीं कर पाती; डाबर कर देती है सब चीज को, क्योंकि ये सुमति नहीं हुई। अब हम गोस्वामीजी से पूछे कि ये सुमति कैसे हो तो तुलसीदासजी पहले कह देते हैं -

जनक सुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ।।

जगतजननी माँ जानकी की कृपा से बुद्धि निर्मल होने की कुंजी तुलसी ने बताई। जब वर्षा होती है, हमारे लिए बुद्धपुरुष कितने बरसे हैं! मुझे कल शाम को एक प्रश्न पूछा गया कि बापू, आपके दादाजी के गुरु कौन थे? मैने कहा, 'रामायण।'

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।

यद्यपि हमारी गुरु-परंपरा निम्बार्की है मगर मेरी व्यक्तिगत एक गुरु-परंपरा है। मैं इसी परंपरा में चलता हूं। यद्यपि परंपरावादी नहीं हूं। आचार्यों की परंपरा में प्रणाम करना पड़ता है। 'वंदे गुरु परंपरा।' हमारा तो सबसे बड़ा गुरु 'रामचरित मानस' है। दादा का कौन गुरु? कभी उसने बताया नहीं, मैंने कभी पूछा नहीं। दादा कभी कहीं गये नहीं। मुझे लगता है कि दादा भावनगर तक नहीं गये। छोटा-सा गांव तरेड, वहां बहुत जाया करते थे। वडाळ आदि गांव है, जो हमारे गृहस्थ साधु-परंपरा में सेवक माने जाते थे। वहां बुलाते थे तो दादा जाते थे। न ऋषिकेष गये, न हरिद्वार गये, न काशी गये, न कैलाश गये। छोटे-से घर को तीरथ बनाकर चले गये! एक झोंपडी को महाद्वार दे कर चले गये! मुझे कल प्यारा प्रश्न पूछा गया, 'बापू, आपकी गुरुपरंपरा क्या है?' आज में दिल खोल कर आपसे कहूं मेरी परंपरा। मेरा सब से पहला गुरु 'रामचरित मानस' है। बस, ये मेरा गुरुग्रंथसाहेब है। मेरा गुरुग्रंथ है। तो, 'रामचरित मानस' मेरे लिए गुरुग्रंथ है। यद्यपि आप सभी जानते हैं कि इससे भी मेरा मूल है वो तो पघड़ी है। शंकर की जटा में से गंगा निकली होगी, मुझे खबर नहीं लेकिन पघड़ी से तो जरूर गंगा निकली है। वो गंगा मेरे लिए दूर है। मैं उसका व्याख्यान गाता हूं लेकिन ये गंगा का अवतरण मैंने खुद ने देखा है। आदि मूल तो यही है फिर भी मेरी व्यक्तिगत व्यासपीठ की एक मीठी परंपरा है वो मैं आपको बता दूं। 'मानस' प्रथम है। उसके बाद मेरी परंपरा में शंकर आते हैं। उसके बाद हनुमानजी। आपके मन में ये बात हो कि न हो मगर मेरा चौथा स्थान है अवधूत शुकदेवजी। तो 'मानस', महादेव, हनुमान, शुकदेवजी। उसके बाद मेरी प्यारी परंपरा में तुलसी आते हैं। ध्यानस्वामी बापा, जीवणदास बापा, विष्णुदेवानंदगिरि कैलास के षष्टम पीठाधीश्वर। फिर क्रम में आते हैं त्रिभुवन गुरु, अमृत माँ, सावित्री माँ, प्रभुदासबापू। लेकिन आदि मूल तो क्या कहूं? बस, लोग कहते हैं 'बावन बार।'

बार बीजना धणीने समरूं...

मारो आ बार बीजो नथी, बार पूर्ण चंद्र है। हमारे में क्या है कि हमारे जो चाचा होते हैं वो ही कंठी बांध देते हैं। दादाजी के गुरु गुमनाम है कोई, पता नहीं। बस, ये ही धारा में हम मौज कर रहे हैं। मुझे कहा था कि बोलो जरूर मगर समझना बहुत। बुद्धपुरुष के वचनों तो शुद्ध है, धवल है। वहां मलिनता है ही नहीं। हमारे जीवन को जीने के लिए इन बुद्धपुरुषों ने कितना प्रयास किया है! और एक सूत्र याद रखना, जीवन को जानने की जरूरत नहीं, जी लो। जानने जाओगे तो करम का सिद्धांत क्या है? किस करम का फल भोग रहे हैं? प्रारब्ध कर्म क्या है? संचित कर्म क्या है? छोड़ो, एक यही पल है। जानने की कोशिश ही छोड़ दो। जी लो। एक छोटे-से जंतु का जीवन भी हम नहीं जान पाते। डिस्कवरी खोज कर रही है। इति तो वो ही कहेगा जो हरि भजते-भजते मगन हो गया। जिन्होंने एन्जोय किया।

मुझे एक ऐसा प्रश्न भी मिला है कि 'बापू, कभी-कभी होता है कि बहुत कथा सुन ली, अब घर में

शांत बैठ जाये। कभी ऐसा होता है कि घर में नहीं बैठना है। जहां कथा हो, सब कथा सुने। आप ही बताये, हम क्या करें?' कथा सुनते-सुनते आपका चित्त, आपकी रुचि, आपका स्वभाव उस मुकाम तक पहुंच जाए कि बस, अब दौड़-दौड़ नहीं करनी है। एक जगह बैठ जाये शान्त। वो भी अच्छा है। लेकिन आपका स्वभाव ये कहे कि नहीं, एक जगह बैठ जायेंगे तो हमारे विचार, संकल्प-विकल्प हमें बिगाड़ देंगे तो कथा में ही ठीक रहेंगे, तो कथा सुनो। मुझे कइ लोग कहते हैं, निवृत्ति कब लोगे? व्यासपीठ ही मेरी नितांत निवृत्ति है। यदि आपको ये लगे कि सूत्र पचाये, शांति से बैठ जाये। ये भी अच्छा है और आपके स्वभाव में ये है कि और सुने, और सुने, ये भी अच्छा है। देखादेखी मत करना। गतानुगति मत करना। आपके स्वभाव के अनुकूल निर्णय करना।

आज ये भी प्रश्न आया है कि 'आपने कहा कि कल्पना संगेमरमरी पथ्थर है, भाव उसको आकृति देता है और सद्गुरु उसमें प्रेम के कारण प्राणप्रतिष्ठा कर देता है। बापू, ये तो है हमारा भाव, हमारा आग्रह लेकिन क्या उस परमतत्त्व को ये बिनती की जा सकती है कि तुम्हें जो रूप, भाव हमारे लिए उचित लगे उस समय इच्छामय नरवेश संवारकर निर्णय कर कि हम बैठ जाये कि दौड़े?' पूर्ण शरणागति में ये भी हो सकता है। शरणागति चैतसिक होती है। शरणागति बौद्धिक भी होती है। शरणागति मानसिक होती है और शरणागति अहंकारिक भी होती है। शरणागति के चार प्रकार समझ लीजिए। एक, मानसिक शरणागति में संकल्प तो होता है कि हम कथा सुने, लेकिन एक विकल्प भी खड़ा हो जाता है कि कब तक सुने? क्या सुने? भीड़भाड़ में कहां जाये? डामाडौल करती है! दूसरी, बौद्धिक शरणागति में थोड़ा निर्णय है कि यही करे, लेकिन बुद्धि भी खेल करेगी, कसौटी पर भी उतर आयेगी कि हम कहीं धोखा तो नहीं खा रहे हैं! तो वहां शरणागति खंडित होती है। तीसरी शरणागति चैतसिक होती है। चैतसिक का मेरा मतलब है जनम-जनम के कुछ प्रारब्धिक संस्कार जो चित्त में संग्रहित है, जो एक प्रोग्राम डाल दिया गया है हमारे कर्मों के आधीन। उसके आधार पर भी शरणागति होती है। चौथी, कुछ शरणागति जो बिलकुल निम्नकोटि की शरणागति होती है वो अहंकारिक शरणागति। प्रतिष्ठा के लिए शरणागति होती है, हम फलां के पास रहते हैं! हमारा पूरा परिवार सालों से बस उन्हीं को गुरु मानते हैं! पूरा अंत:करण शान्त हो जाये; मन, बुद्धि, चित्त, अहम् उसके बाद भरत की शरणागति होती है। भरत कहते हैं, अब तू निर्णय कर, तुम जो चाहो करो, मैं कोई निर्णय नहीं लूंगा।

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।

बुद्धपुरुष पर छोड़ दिया फिर पूछो भी मत कि क्या निर्णय लिया? वो अपने आप करेगा। अंत:करण चतुष्टय खतम हो जाये। नव के अंक के पहले आठ, सात आते हैं। एक के बाद कौन-सा अंक है गणित में? शून्य। तमाम अंकशास्त्र खतम हो जाये और जिसको बिलकुल शून्य, नितांत रिक्तता ये जब होती है। तब जाके भरतने कहा, 'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।' अरे यार! देखो तो सही, कितनी हद की शरणागति है ये कि हमारी प्रसन्नता की दाता, तू चिंता मत कर। तू प्रसन्न रहना चाहिए बस। तेरे मन की प्रसन्नता टूटे ऐसा हम कुछ नहीं करेंगे। जीव है हम, एक जंतु है,। व्रज की गोपियां शिकायत करती है, रुठती है लेकिन उनकी शरणागति पूर्ण है। इसलिए कृष्ण के एक बोल पर आठ-दस किलोमीटर पर जिंदगीभर बैठी रही। वर्ना मथुरा जाने में कितनी देर लगेगी? लेकिन गोविंद ने कहा था। गोविंद को भी पता था कि मैं जानेवाला नहीं लेकिन उसने कह दिया कि मैं आउंगा। इसका मतलब शरणागत गोपांगनाओं ने लिया कि हमें जाने की मना कर रहे हैं।

ये मेघ की जो वर्षा होती है, मूल में तो समुद्र है। जलराशि तो समुद्र है। समुद्र के बिना मेघ नहीं हो सकता। क्योंकि समुद्र में सूर्य का ताप, फिर भांप बने, बादल बने और बादल बरसे। इतना बड़ा जलराशि समुद्र लेकिन हम पी नहीं पाते हैं। ये तो बादल ही बरसा हो तब पेय बनता है। समुद्र का तो खारा पानी है। वो पचता नहीं है। वेद, शास्त्र पुराण उदधि है, समंदर है। साधु-संत बादल है। वेद-पुराण को कोई साधु-संत हमें पाचक बना

देता है। तो परमात्मा की कथा तुलसी जैसे बुद्धपुरुष से गाई गई कथा हम तभी समझ पायेंगे जब इनसे गुजरेंगे तब पता लगेगा ये मलिन नहीं है, खारे पानी को मीठा करनेवाला है। ये धवल पानी बरस रहा है। सागर का पानी डाबर है। शास्त्र सीधा समझ में नहीं आता। कोई साधु बरसे तभी रहस्य खूलता है। बुद्धपुरुष धवल है। पहाड़ का, मलिनता का दोष इनमें नहीं लगता जब एझ इट इझ हमने श्रवण किया। हम कोई बात सुनते हैं तो हमारा अंत:करण अंदर-अंदर लड़ता है। मन को अच्छा लगता है तो बुद्धि कहती है फंस गया! चित्त जनम-जनम के संचित संस्कार की पोथी खोलता है। और अहंकार अपनी डिमडिमघोष करता है। कोई भी शास्त्र हम बुद्धपुरुष से प्राप्त करते हैं तब उसकी धवलता का पता लगता है, वर्ना हम बड़ों-बड़ों को भी मलिन करार दे देते हैं! तो, भुशुंडि के गुरु ने कहा कि तू ओर पहाड़ की तरह नहीं है, तू 'तृषाराद्रिशंकाश' है, तू धवल है।

पहाड़ का दूसरा दोष है स्थावर। एक जगह स्थिर उसे स्थावर कहते हैं। लेकिन हिमालय स्थावर नहीं है। हिमालय को राजा बना दिया और जब हिमालय के घर पार्वती का जनम हुआ तब और नदियों को जंगम कर दिया। तीसरा, पहाड़ जड़ होता है। जड़ माने मूढ, चट्टान की तरह संगदिल। मगर हिमालय जड़ नहीं है। हिमालय द्रवीभूत होता है। हिमालय और उसमें कैलास में बैठनेवाला कृपालु देव। इसलिए पहाड़वाला दोष जड़ता उसमें नहीं है। चौथा, भयानक। पहाड़ भयानक होते हैं। निकट जाये तो पहाड़ भयानक लगता है। ए तो दूरथी ज डुंगरा रळियामणा होय! कैलास भयानक नहीं है। उसमें बुद्धपुरुषदत्त हमारी आंखों में थोड़ा भी वो आया हो तो उसकी भयानकता के बजाय उसका सौम्य रूप देख सकते हैं। इसीलिए कागभुशुंडि के गुरु कहते हैं कि आपका स्वभाव, शील याद करो। आप तो 'तृषाराद्रि संकाश हैं', धवल है। आप अचल है। आपके पेट में हीरे पकते हैं। तो, बुद्धपुरुष का लक्षण है धवलता, अचलता, उदारता, सौम्यता, द्रवता। ये गौर ऐसा है और गंभीर है। विनोदी जरूर होता हैं बुद्धपुरुष। अंदर की गहराई हम नहीं समझ पाते! गंभीर होता है।

तृषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं।
मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा।
लसलिभाल बालेन्दु कंठे भुजंगा।।

मनोभूत मानी कामदेव। तुलसी कहते हैं कि तेरा शरीर कैसा है? श्री मानी शोभा। कोटि-कोटि कामदेव की प्रभा मानी तेज। इससे भी अधिक तेरा शरीर सुंदर है। अब उसको बुद्धपुरुष का लक्षण कैसे समझें? हमारे देश में अष्टावक्र हुए हैं। उसका शरीर मनोभूत कोटि शोभा तो नहीं दिखता। उसमें तो अष्ट वक्र है। और कई बुद्धपुरुष ऐसे हैं कि जो शारीरिक रूप सें सुंदर न भी हो। लेकिन यहां उपरी रूप की चर्चा नहीं। वेदांत कहता है, स्थूल शरीर के अंदर एक सूक्ष्म शरीर होता है। किसी भी बुद्धपुरुष का एक सूक्ष्म शरीर होता है। हमारा सूक्ष्म शरीर माया से आवृत्त है इसलिए हमारे सूक्ष्म शरीर में माया के कारण सुंदरता बिगड़ी है। बुद्धपुरुष का सूक्ष्म शरीर चारु माने सुंदर। कल्लोलिनी, कलकल नाद करती हुई, जिसकी जटा से भी भक्ति की गंगा, रामकथा की गंगा, विवेक की गंगा निकली है। बुद्धपुरुष के मस्तिस्क से अगणित गंगाओं प्रगट होती हुई, कलकल नाद करती हुई गंगा का हमें अनुभव होता है। तो सिर पर गंगाएं भी बुद्धपुरुष का लक्षण माना जाय। बालेन्दु याने दूज का चांद, शंकर के भाल में जो रहता है। भगवान शिव के भाल में वक्रचंद्र बिराजमान है। इसका मतलब है कि बुद्धपुरुष वो है जो अपने वक्रआश्रित को भी अपने भाल में रखता है। इतना आदर, गौरव प्रदान करता है।

वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणं ।

गुरु ने वक्र चंद्र को आश्रित कर दिया, तो सर्वत्र वंद्य बन गया। आगे-

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।।
मृगाधीशचर्मांबरं मुंडमालं।
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।

भगवान शंकर के कान में कुंडल चलत माने हिल रहे हैं। कामदेव को लज्जित करनेवाला रूप तुलसी को दिखाना है। तेरे कान में कुंडल चलायमान है। और तुलसी 'मानस' में लिखते हैं कि -

कुंडल कंकन पहिरे ब्याला।

कान में तो सर्प पहना है। और चलत है तो सर्प भी चलता है। हलचल तो करता है। लेकिन बुद्धपुरुष की आंख इतनी पवित्र है कि भुजंग को भी भूषण के रूपमें देखता है। शिव के कान के कुंडल की शोभा का मतलब 'वाणीगुणानुकथने श्रवणौकथाया:।' शंकर के समान किसी के पास श्रवणविज्ञान नहीं। शंकर के समान वेदांत का श्रवण करनेवाला कोई नहीं। शंकर के समान वेदान्त का प्रवक्ता भी कोई नहीं। सर्जक भी कोई नहीं। शंकर के समान भक्तिशास्त्र का सुननेवाला और गायक भी कोई नहीं। जिसे व्यासपीठ श्रवणविज्ञान कहती है।

रामकथा से जुड़ी एक कथा है। 'मानस' में उसका संकेतमात्र है, श्रवण कुमार; 'तापस अंध साप सुधि आइ।' एक श्रवण नामक बालक अंध तापसी माता-पिता को तीर्थयात्रा पर कावड में ले कर जाता है। ये बालक का नाम श्रवणकुमार है। आप जरा प्रशांत चित्त से सुने। माता-पिता अंध है, ठीक है? जिसको आंख नहीं है, जो दर्शन नहीं कर पाते उसको तीर्थाटन करने की इच्छा करनी चाहिए? मैं आपसे वार्तालाप करना चाहता हूं बाप! इस घटना से हमें श्रवणविज्ञान का थोड़ा विशेष परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि तीर्थाटन पुण्यलाभ करता है। दर्शन से तीर्थों में जाने से, स्नान करने से पुण्यलाभ होता है। यद्यपि हमारी अद्‌भुत परंपरा है तीर्थाटन। इसलिए तो दीपावलि के बाद की पहली कथा हम अकसर तीर्थों में ही करते हैं। तीर्थयात्रा महिमावंत है। लेकिन तीर्थ का दर्शन, तीर्थ में बिराजमान परमात्मा के कोई भी विग्रह के दर्शन के लिए आंखें तो चाहिए।

तो, श्रवण के माँ-बाप ने तीर्थयात्रा करने की इच्छा प्रगट की। माना कि आज्ञांकित बेटे को स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन आज्ञांकित बेटा सविनय माता-पिता को प्रणाम करके प्रार्थना भी कर सकता था कि माता-पिता, आपको आंख नहीं हैं; बूढापा भी है। मैं तो कावड में उठाके आपको घुमाउंगा लेकिन तीर्थों में कितनी भीड़ होती है? वैसे भी स्थूलरूप में दर्शन तो आप कर नहीं पाओगे। तो मुझे आपकी सेवा घरमें ही मिले तो आप घर को ही तीर्थ बना दो न! लेकिन श्रवण ने भी कोई विनय नहीं किया! श्रवणविज्ञान, सुननेवाली कला जब कुछ सोचती नहीं तो अंधों को यात्रा पर ले चलती है! ये गतानुगति है। ये अंधश्रद्धा है। और ध्यान देना मेरे श्रावक भाई-बहन, जब बिना सोचा श्रवण अंधों को निरर्थक यात्रा के लिए तो वो कावड ही बनती है, बोज ही बनता है! कन्धे हल्के नहीं कर सकते। बेचारा तीर्थ-तीर्थ में घूमा श्रवण! हमारा वेदांत केवल श्रवण पर रुकता नहीं। श्रवण के बाद बड़ी लंबी प्रक्रिया हमारे वेदांत ने प्रस्तुत की। श्रवण, मनन, निधिध्यासन आदि प्रक्रिया से गुजरना है। बिजली के चमक में मोती पीरो लो। ये जागी हुई आत्मा के लिए क्षण होती है। लेकिन हम इतने जागे नहीं है। इसीलिए सुनने के बाद कोई भी निर्णय करो इससे पहले घर जाके थोड़ा मनन करो। कहीं हम अंधों को यात्रा पर उठाकर न ले जाये और बोज न बन जाये! परिणाम ये आया कि श्रवण बेकार गया। और केवल सुनकर भी निर्णय नहीं करना चाहिए, चिंतन करना चाहिए।

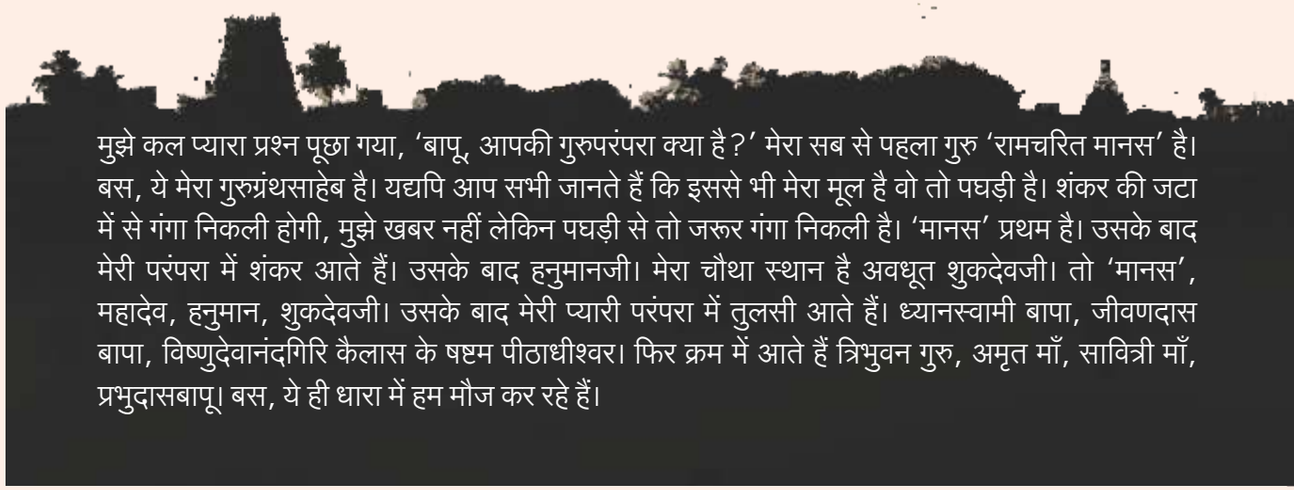

मुझे कल प्यारा प्रश्न पूछा गया, 'बापू, आपकी गुरुपरंपरा क्या है?' मेरा सब से पहला गुरु 'रामचरित मानस' है। बस, ये मेरा गुरुग्रंथसाहेब है। यद्यपि आप सभी जानते हैं कि इससे भी मेरा मूल है वो तो पघड़ी है। शंकर की जटा में से गंगा निकली होगी, मुझे खबर नहीं लेकिन पघड़ी से तो जरूर गंगा निकली है। 'मानस' प्रथम है। उसके बाद मेरी परंपरा में शंकर आते हैं। उसके बाद हनुमानजी। मेरा चौथा स्थान है अवधूत शुकदेवजी। तो 'मानस', महादेव, हनुमान, शुकदेवजी। उसके बाद मेरी प्यारी परंपरा में तुलसी आते हैं। ध्यानस्वामी बापा, जीवणदास बापा, विष्णुदेवानंदगिरि कैलास के षष्टम पीठाधीश्वर। फिर क्रम में आते हैं त्रिभुवन गुरु, अमृत माँ, सावित्री माँ, प्रभुदासबापू। बस, ये ही धारा में हम मौज कर रहे हैं।

भाव बदलता रहता है, तत्त्व कभी बदलता नहीं है

'मानस-रुद्राष्टक' के माध्यम से कुछ विशेष रूप में बुद्धत्व के स्वाभाविक लक्षणों की संवादी सात्त्विक और तात्त्विक चर्चा हो रही है। कुछ बातें करके आज कथा का विराम भी बारह बजे के करीब देना हैं। आप प्रसन्न चित्त से सुने।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।

यहां 'कुंडल' शब्द है। मैंने कल भी भगवान वल्लभाचार्य प्रभु का स्मरण किया था। जिसकी यहां बैठकजी भी है। मैं वहां कल गया लेकिन जीर्णोद्धार हो रहा है। महाप्रभुजी ने श्रीमद् 'भागवत' के भाष्य में गोपीजन जब रास में जाती है उसके कुंडलों की आध्यात्मिक चर्चा की है। एक कुंडल का नाम योग है। दूसरे कुंडल का नाम वेदांत है। ये बहुत गहन चर्चा है। वो न तो हमारे स्वभाव में है। गुरुकृपा से थोड़ा समझ जाता हूं मगर समझा नहीं पाता। क्योंकि ये गहन बातें हैं। हमारे यहां योग साधना में बहुत प्यारा शब्द है 'कुंडलिनी।' योगी लोग कुंडलिनी जागृत करते हैं योग्य गुरु के मार्गदर्शन में। वहां कुंडलिनी का आकार है वो सर्पाकार है इसलिए मेरी व्यासपीठ इसी शब्द की ओर अग्रसर है, 'चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं।' और शंकर के कुंडल तो, 'कुंडल कंकन पहरे ब्याला।' कहीं महाकाल के मंदिर में बैठे हुए बुद्धपुरुष का ये तो इशारा नहीं कि इसका जो बुद्धपुरुष योगपरक विद्या में पारंगत है; योग के माध्यम से योगेश्वर को, या तो योगीश्वर को पा सकते हैं। उसके लिए तो ये सर्पाकार कुंडलिनी ही कुंडल है। और वो जरा अनधिकार चेष्टा हो जाएगी, इसीलिए कि मैं इस मारग का पथिक नहीं हूं! मैं थोड़ा समझ सकता हूं और आखिर में तो हम सब जानते हैं कि योग की प्रक्रिया में धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए भ्रूकुटि के बीच में वहां जो एक सहस्राधार चक्र है वहां तक की यात्रा योगीलोग करते हैं। लेकिन योग्य गुरु के बिना इस चेष्टा में मत पड़ना; 'राम-राम' करना। और गांधीबापू ने कहा है कि मेरा अनुभव है कि रामनाम से तीन काम होते हैं। एक भयमुक्ति होती है। दूसरी विकारमुक्ति होती है। और तीसरी रोगमुक्ति होती है। गांधी को विनोबाजी ने पूछा, बापू! आप कभी वाणीविलास तो नहीं करते। आप का तो रामनाम के साथ बड़ा अंतरंग संबंध है लेकिन जरा और खुलासा कीजिए। तब गांधीबापू ने कहा, 'मंत्रजाप मम दृढ बिस्वासा।' तुलसी को क्वोट करते रहते हैं। दृढ विश्वास के साथ जो रामनाम का, प्रभुनाम का आश्रित है, वो हरिनाम ही उसे भयमुक्त, विकारमुक्त, रोगमुक्त भी करता है। यद्यपि रामनाम जैसी परम औषधि को रोगमुक्ति के लिए कलियुग में नहीं लेना चाहिए क्योंकि आज-कल बहुत औषधियां सरल, सीधी-सादी आ चुकी है। उसका प्रयोग रोगमुक्ति में करना चाहिए। लेकिन यदि विश्वास है तो साधक रोग से मुक्त भी हरिनाम से हो सकता है।

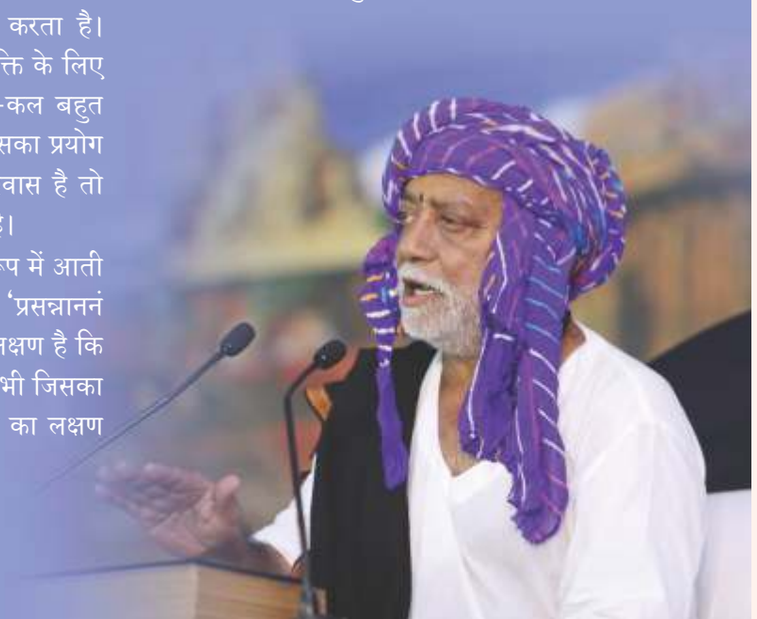

तो ये कुंडल की बातें बहुत गर्भित रूप में आती है। उसको प्रणाम करके हम आगे बढें। 'प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं। ये बुद्धपुरुष का स्वाभाविक लक्षण है कि ज़हर पीते हुए भी, ज़हर को कंठ में रखते हुए भी जिसका चेहरा प्रसन्नता से भरा रहता है। ये बुद्धपुरुष का लक्षण माना गया है। मृगाधीश का अर्थ है प्राणीओं का ईश्वर-शेर। उसका जो चमड़ा है वो जिसका अंबर है। भगवान शंकर के दो वस्त्र है, चर्माम्बर, दिगंबर। वो कभी दिशाओं का वस्त्र पहनते हैं, कभी चर्माम्बर पहनते हैं। मृग याने प्राणी। प्राणी का जो ईश है वो शेर। 'मानस' में हम सब को प्राणी कहा है। और हमारी चमड़ी जो है वो संवेदना का प्रतीक है। महादेव चर्माम्बर मानी हम सब की संवेदना है उसी को बाबा ओढ़ता है। बाबा कहते हैं कि मेरा शृंगार करना है तो तुम्हारी संवेदना ओढ़ाओ। तुममें संवेदना होनी चाहिए। संवेदना मीन्स भाव होना चाहिए। हम जल जायेंगे। हम मर जायेंगे तो भी वो इतना कृपालु है कि हमारी भस्म का लेपन करता है, भस्मांबर हो जाता है। भगवान कहते हैं कि तेरी चमड़ी में जब संवेदना होगी तम बैं तुम्हें मेरा शृंगार बनाउंगा। मेरा आभूषण बनाउंगा, मैं तुझसे अपने को सुशोभित करूंगा। तो मूल बात क्या है? संवेदना होनी चाहिए। आज मेरे पास एक प्रश्न है -

तेरे खयाल में जब बेखयाल होता हूं।
जरा-सी देर ही सही लाजवाब होता हूं।

पूछा है, बापू! ये बेखयाली जरा-सी देर क्यों? कायम क्यों नहीं? और ये कायम कैसे हो? और प्रश्नकर्ता समाधान लेता है कि कायम नहीं तो कुछ देर तो रहे। कुछ कहे। संवेदना क्षण-दो क्षण क्यों? भाव क्षण-दो क्षण क्यों? 'रामचरित मानस' ने दो शब्द लिए है, 'तत्त्व' और 'भाव।' संवेदना का मतलब भाव-प्यार। हमारी ये लाजवाब स्थिति कायम क्यों नहीं रहती? अस्तित्व का नियम है मेरे भाई-बहन, भाव कभी एक रूप में नहीं रह सकता। भाव तत्त्व नहीं है। तत्त्व कभी बदलता नहीं है। तत्त्व को बदलने में कोई कामयाब नहीं होता सिवाय परमेश्वर। आप और हम पृथ्वी, आकाश नहीं बदल सकते। जल, अग्नि, पवन शायद थोड़ी दिशा बदल दो, नाश नहीं कर सकते। लेकिन भाव बदलता है। कभी भाव ज्यादा होता है, कभी कम। कभी उपर की ओर जाता है, कभी अधोगमन करता है। कभी क्षणिक, कभी शाश्वत का रूप लेता है। भाव का स्वभाव ही है बदलते रहना। और तत्त्व का अस्तित्वमूलक स्वभाव है न बदले। भाव के कर्ता हम है। भगवान राम कहते हैं, सकल सृष्टि का कर्ता मैं हूं। इन्सान तत्त्व नहीं बदल सकता, मेरा ठाकुर कर सकता है। तो जो पूछा गया है मैं उसके बारे में इतना ही कहूंगा कि तत्त्व बदला नहीं जाता। हमारी संवेदना क्या है, हमारा प्रेम क्या है? भाव तक रुकी हुई है, तत्त्व तक पहुंची नहीं है। अल्लाह करे, ये तत्त्व तक पहुंच जाये तो हम में अकर्ताभाव आ जाएगा। और अकर्ताभाव आते ही वो शाश्वत हो जाएगा। हमारे जीवन में ऐसा नहीं होता है कि एक आदमी के प्रति थोड़ा भाव होता था अब नहीं रहा, भाव बदल गया। वो पहले हमको ज्यादा अच्छा लगता था। बढ़-चढ़, उतार-चड़ाव हुआ करता है। कायम करने के लिए भाव को तत्त्व में बदलना होगा। भगवान राम 'सुन्दरकांड' में बोले हैं -

तत्त्व प्रेम कर मम अरू तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा।।

राम का संदेश हनुमानजी जानकीजी को सुनाते हैं। क्या भगवान राम का संदेश परंपरा के अनुकूल है? क्या ये संदेश में न्याय है कि जानकी को अन्याय हो रहा है? परंपरा के अनुकूल ये राम का संदेश व्यक्तिगत रूप में मुरारिबापू को नहीं लगता, तलगाजरडा को रास नहीं आता क्योंकि जब भी हम कहते हैं; किसी के प्रेम की बात करते हैं तो कहते हैं, तुम्हारा और हमारा प्रेम हम दो ही जानते हैं, तीसरा कोई जानता ही नहीं। अक्सर परंपरा ये है। और यहां राम जानकी को कहते हैं 'जानत प्रिया एक मन मोरा।' तो जानकी कोई काम की नहीं? मेरी दृष्टि में परंपरावादी जो बात है वो यहां टूट गई। यदि ये परंपरा-सी है तो राम क्यों परंपरा तोड़ रहे हैं? अथवा तो सीया के प्रेम को इतना अन्याय क्यों हो रहा है कि सिर्फ़ मेरा ही मन जानता है! लेकिन राम बोलते हैं, परम बोलते हैं। परम की बोली में चार तत्त्व होते हैं। तुलसी कई प्रकार के वचनों की व्याख्या करते हैं। बोलने में चार प्रकार होता है।

प्रेम, प्रसंसा, बिनय, ब्यंग जूत सुनी विधी के बर बानी।

मन ही मन महेश मुदीत मन जगत मानु मुसुकानी।

वहां ब्रह्मा की श्रेष्ठ वाणी के चार प्रकार बता दिया है। जो श्रेष्ठ वाणी बोलता है उसमें चार वस्तु आपको देखनी पड़ेगी। इसमें प्रेमतत्त्व कहां है, इसमें प्रशंसातत्त्व कहां है, विनय, विवेक और लाईट मूड में व्यंगतत्त्व कहां है? भुशुंडि जैसे वक्ता हो, शुकदेवजी जैसे वक्ता हो, इन महापुरुषों की बानी में चार प्रकार निकलता है। एक, प्रेम; हमें नहला दे प्रेम-बोली में। हम निकल न पाये भावदशा से! दूसरी, प्रशंसा; झूठी प्रशंसा नहीं, ध्यान देना। ये नीतिनभाई का एक वाक्य मुझे बहुत अच्छा लगा। उसकी उपस्थिति में बोलूं ये अच्छा भी न लगे, मैं जानता हूं। लेकिन मुझे बहुत प्रिय लगा, मैं दुनिया के चौक में कहता हूं कि प्रशस्ति नहीं करनी चाहिए, लेकिन प्रतीति तो कहनी ही चाहिए। किसी की प्रशंसा नहीं, लेकिन हमें जो अनुभव हुआ है वो कब तक रोके रहोगे ? प्रशंसा का अर्थ यहां स्वार्थी देवता प्रशंसा करे ये नहीं है। परमार्थी कोई सर्जक प्रशंसा करे, उसकी बात है। कभी एक ही बुद्धपुरुष ऐसा बोलेगा कि प्रेमभाव में हमें डूबो देगा। और जब हम प्रेमभाव में जायेंगे तो वो ही आपको भीतर का एक्स-रे लेकर लगेगा उसने सूत्र को आरपार उतार दिया तब वो प्रशस्ति नहीं करे, प्रतीति कहेगा कि मुझे आज अच्छा श्रोता मिल गया। ये प्रशंसा नहीं है, ये प्रतीति है।

आज मुझ पर एक चिठ्ठी आइ है कि बापू, कल आप कहते थे कि मुझे बहुत बोलने का अवसर दो, मुझे बहुत बोलना है। बापू, हमें भी बहुत सुनना है। प्रेम, प्रशंसा; कागभुशुंडि जब गरुड को कहे, 'नाथ कृतारथ भयउ मैं।' ये खोखली प्रशंसा है? उसको खबर है कि व्यवहार जगत में ये गरुड मेरे पक्षीकुल का राजा है। एक तो ये है और ये वो गरुड है जिसकी पीठ पर मेरा रघुनाथ बिराजमान होता है। ये वो गरुड है विष्णु के रूप में।

नाथ कृतारथ भयउ मैं तव दरशन खगराज।

हे खगराज, आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया। और क्या ये आमने-सामने आयना दिखा रहे हैं? दोनों एक-दूसरे की प्रशंसा नहीं कर रहे, अनुभूति कर रहे हैं। नाथ! आज्ञा करो। और ये दो दर्पण आमने-सामने सिर नहीं हिला रहे! एक-दूसरे की प्रशंसा नहीं है। बहुत मृदु बचन में खगराज बोले हैं। और शंकर निज मुख से जिसकी बात करता हो वो प्रशंसा होगी? भुशुंडि के बारे में शंकर की अनुभूति होगी। क्योंकि उसने उसकी कथा में हंस बनकर कथा सुनी है, प्रशंसा नहीं। बुद्धपुरुष किसी को ये कहे कि आपने बहुत सुंदर किया तो उसमें प्रशंसा नहीं होती है, प्रतीति होती है।

प्रेम, प्रशंसा, विनय; बुद्धपुरुष बोलता है तो विनय से बोलता है। वक्ता को एक ही ध्यान रखना है, कैसा भी बोलो, द्वेषमुक्त चित्त से बोलो। तुम्हारा संदेश पहुंचेगा, पहुंचेगा, पहुंचेगा। चित्त द्वेषमुक्त होना चाहिए। विनयवाणी; और ये ब्रह्मा की श्रेष्ठ वाणी है। व्यंगजूत; वक्ता थोड़ा व्यंग करेगा, थोड़ा सरल कर देगा व्यंगात्मक। आपको कभी चुटकुला सुना देता हूं अथवा तो किसी रूप में थोड़ा व्यंग कर दूं तो आप समझ जाते हैं। लेकिन बानी का एक लक्षण है। आपको धीर-गंभीर बनाकर मुझे छोड़ना नहीं है।

तो मेरे भाई-बहन, भगवान राम जब बोल रहे हैं तब जानकी को अन्याय हो रहा है। वो कहते हैं, 'जानत प्रिया एक मन मोरा।' बोले तो प्रेमवाली बात है। रामजी संदेश भेजते हैं कि किसीको अपना दु:ख कहो तो घट जाएगा। लोग किसीके सामने दिल खोलते हैं। लेकिन रामजी कहते हैं, किसको कहूं? कोई जाननेवाला तो नहीं। तो फिर रामजी संदेश क्यों भेजते हैं? रामजी बोले, हां हां, कोई दु:ख जानता नहीं लेकिन हां, मेरा मन जानता है। तो जानकीजी ने संदेश भेजा। ये सब 'रामायण' में खोजने मत जाना। चौपाई 'रामायण' की है, परिक्रमा मेरी है। तो, जानकीजी ने संदेश भेजा कि आपके मन को सुनाओ, आपका मन तो जानता है न? तो राम ने फिर संदेश भेजा, मेरे मनको सुनाउं, मगर मेरा मन तो तेरे पास रहता है। प्रेमियों का दो मन नहीं होता यारो! भाव में दो मन होते हैं, तत्त्व में दो मन नहीं होता। तत्त्व में उतार-चढ़ाव नहीं होता। तत्त्व जो समझ में आता है तो चोबीस घंटों हम लाजवाब रह सकते हैं। जरा-सी

बात मिट जाती। तो भगवान राम कहते हैं, ये प्रेमतत्त्व है। उसमें दोनों एक हो जाते हैं। शरीर भिन्न है, दो दिल नहीं। अद्वैत, जिसको मेरी व्यासपीठ प्रेमाद्वैत कहती है।

बाप, तत्त्व बदला नहीं जाता, भाव बदलता रहता है। क्योंकि भाव के कर्ता हम है। कैसा भी भाव हम कर सकते हैं। कोई भी भाव कर सकते हैं। प्रभु में पुत्र का भाव कर सकते हैं, बाप का, भाई का भाव भी कर सकते हैं। लेकिन ब्रह्मतत्त्व है, बदलता नहीं, वो तो जो है वो ही रहता है। तत्त्व बदला नहीं जाता। मेरे कहने का मतलब है, भाव मानी संवेदन। बुद्धपुरुष हमारा भाव देखता है, हमारी संवेदना देखता है, उसीको ओढ़ता है।

मृगाधीशचर्माम्बरं मुंडमालं।

एक वस्तु याद रखना कि शंकर भगवान जहां-तहां मुंड मिल जाये और माला बनाकर पहनते नहीं। ये पागल नहीं है, इसे बहुत पता है। ये रूखड है। जगदीश त्रिवेदी ने रूखड पर कविता भेजी है। हरीन्द्र दवे ने रूखड के भजन पर बहुत आस्वाद किया है। लेकिन मान लो कि रूखड कोई पात्र नहीं है, तो भी मुझे आपत्ति नहीं है। रूखड विचार जरूर है। मेरे लिए व्यक्ति से ज्यादा विचार महत्त्व का है। आदमी विचारों से ऊंचा-नीचा हो जाता है। संतवृत्ति का नाम रूखड है।

भले फाटी पडे पृथ्वी, कदी बीवे नहीं बावो।
समाधि ले परंतु होठने सीवे नहीं बावो।

कागभुशुंडि गाता रहे, शंकर गाता रहे। समाधि में हो तो भी बोलने की बात आये तो होठ सी न ले। बुद्धपुरुष की बातें इसमें बताई गई है। शंकर मुंडमाला जो पहनता है। आप क्या समझते हैं? वो हर एक खोपड़ी पहेनेगा? रूखड जरुर है लेकिन ऊंचाई कैलास की है। याद रखना श्रावक भाई-बहन, भगवान शंकर उसी खोपड़ी की मुंडमाला पहनते हैं जब वो खोपडी जीवित थी तब उसने बहुत रामनाम का जप किया था। साहब, बुद्धपुरुष क्या है? जो रामनाम जपते हैं उनको गले लगाते हैं। महादेव मुंडमाल पहनते हैं इसका अर्थ तलगाजरडा का यही है।

प्रियं; शंकर किसको प्रिय नहीं है? सबको प्रिय उसका नाम शंकर। परमतत्त्व सब का प्रिय होता है। 'सब मम प्रिय सब मम उपजाये।' 'प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।' हे सर्व के नाथ, सिर्फ़ सक्षम हो उसके नाथ नहीं, तू सर्वनाथ है; तू अनाथ का भी नाथ है; तू

अकिंचन का नाथ है; तू उपेक्षित-वंचित का नाथ है। तू सबका नाथ है। तू भजनीय है। तू सेव्य है।

कथा के क्रम में भगवान राम चित्रकूट से स्थलांतर करते हुए अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, कुंभजऋषि सब को मिलते-मिलते गीधराज जटायु से मिलकर गोदावरी के तट पर पर्णकुटि बनाकर पंचवटी में निवास करने लगे। एक बार लक्ष्मणजी ने प्रभु को पांच प्रश्न पूछे और वहां राम ने आध्यात्मिक उत्तर दिये। उसके बाद शूर्पणखा आती है। दंडित हुई, खर-दूषण को उकसाये। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। रावण शूर्पणखा को ढ़ाढ़स देकर मारीच के साथ योजना बनाकर सीता के अपहरण के लिए आता है। एक वस्तु याद रखना, रावण के जीवन में कोई आदर्श नहीं है। रावण आदर्शवादी नहीं है। रावण के उद्देश है कि वैर करूं या भक्ति करूं लेकिन इनको प्राप्त करूं। आदर्श नहीं। राम उसका आदर्श नहीं, राम को वो गाली भी बोल देता है लेकिन उसे पाना है सत्य को। रावण आदर्शवादी नहीं, उद्देशवादी है। योजना बनाकर आता है। रामजी ने स्वयं योजना बना दी। जानकीजी को अग्नि में समाविष्ट कर दिया। प्रतिबिंब रखा। और रावण ने जानकी का अपहरण किया। जटायु ने कुरबानी दी।

यहां मृग का वध कर भगवान लौटे। पंचवटी की शून्यता देखकर प्राकृत लीला करते हुए भगवान रो पड़े। जानकी की खोज करते प्रभु आगे निकले। जटायु मिले। जटायु को पितृवत् आदर देकर जटायु का संस्कार किया। कबंध नामक राक्षस को गति देकर भगवान प्रतीक्षारत शबरी के आश्रम में पहुंचे। नव प्रकार की भक्ति की चर्चा की गई। शबरी योगानल में अपने देह को विसर्जित करके उसी स्थान पर पहुंच जाती है, जहां से कभी लौटना न पड़े। प्रभु पंपासरोवर आये। वहां नारदजी से भेंट हुई।

'किष्किन्धाकांड' में हनुमान और राम का मिलन और हनुमान के माध्यम से राम और सुग्रीव की भेंट-मैत्री हुई। अंगद का युवराजपद। चातुर्मास प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर किया। सुग्रीव भोग में प्रभु का कार्य चुक जाता है। श्री हनुमानजी सुग्रीव को सावधान करते हैं। प्रभु की शरण में आया। सीताखोज का अभियान चला। हनुमानजी सबसे पीछे प्रभु की दी हुई अंगूठी लेकर जा रहे हैं। स्वयंप्रभा ने कहा कि आप लोग समंदर के तट पर जाओ। संपाति ने मार्गदर्शन किया। हनुमानजी पर्वताकार होते हैं। मार्गदर्शन लिया। 'सुन्दरकांड' शुरू -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

दो वस्तु याद रखना, राम की कथा सुनने से दु:ख भागते हैं, अवश्य। लेकिन रामकथा दौरान संत की कथा सुनने से संशय भागता है। दु:ख भागे ये अच्छी उपलब्धि नहीं है। संशय भागे ये अच्छी उपलब्धि है। राम की कथा सुनी लेकिन जानकी को संशय हुआ कि ये रामदूत अपने को कहलता है, तो राम और वानर की संगति कैसे हुई? ये संशय जानकी को पैदा हुआ। हनुमानजी को अपनी कथा नहीं सुनानी थी, राम की कथा सुनानी थी। लेकिन जानकी ने इसी तरह पकड़ा तो ये कहने के लिए हनुमानजी को अपनी कथा कहनी ही पड़ी। और संत की कथा जानकी ने सुनी तब संशय खतम हो गया। रामकथा से दु:ख जाएगा और संत की कथा से संशय जाएगा। माँ का संशय गया। पुत्र को वरदान दिया। फल खाये। तरु तोड़े। बंधन हुआ। रावण की सभा में गये। लंका जलाई। हनुमानजी माँ के पास से चूडामणि लेकर मित्रों के साथ भगवान के पाच पहुंचते हैं। समुद्र के तट पर सब पहुंचे। विभीषण शरणागत हुआ। विभीषण की राय से प्रभु तीन दिन समुद्र के तट पर अनशन व्रत लेकर बैठे। लेकिन जड़तत्त्व है समंदर! तीन दिन बाद प्रभु ने लक्ष्मण से धनुषबाण मांगा। समंदर विप्र रूप लेकर प्रभु की शरण में आता है। और भगवान के सामने प्रस्ताव रखता है कि नल-नील द्वारा सेतु बनाया जाये। सेतुबंध का विचार प्रभु को अच्छा लगा।

'लंकाकांड' में सेतु बना। रामेश्वर भगवान की स्थापना हुई। सब समुद्र पार हुए। प्रभु ने सुबेल पर मुकाम किया। रावण का महारस भंग हुआ। अंगद संधि का प्रस्ताव रखने रावण के दरबार में गया, संधि स्वीकारी नहीं गई। युद्ध अनिवार्य हुआ। 'रावण वध मंदोदरी शोका।' क्रिया हुई रावण की। विभीषण को राजतिलक हुआ। राम-जानकी का पुन:मिलन हुआ। भगवान राम पुष्पक विमान में मित्रों को लेकर अयोध्या की ओर यात्रा करते हैं। हनुमानजी भरत को खबर करते हैं। भगवान शृंगबेरपुर गये। समाज के आखिरी लोग निषाद, गुह दौड़कर प्रभु के पास आये। भगवान सबको गले लगाते हैं।

'अयोध्याकांड' के आरंभ में भरतजी विरह में डूबे हैं कि प्रभु नहीं आयेंगे तो क्या होगा? और उसी समय श्री हनुमानजी ने भरत को सब खबर दी। फिर विमान सरजू के तट पर उतरा है। भगवान जन्मभूमि को प्रणाम करते हैं। प्रभु ने शस्त्र छोड़कर वशिष्ठ गुरुदेव को प्रणाम किया। सभी को मिले। भगवान सबसे पहले कैकेयी के घर गये। कहा कि माँ, मैं वन नहीं गया होता तो मैं ऐसा नहीं हो पाता। ये तेरी कृपा है। सभी माँ से मिले। ब्राह्मणों को पूछा कि राजतिलक आज ही कर दे? तो कहे, हां आज ही कर दिया जाय। दिव्य सिंहासन मंगवाया। पृथ्वी को प्रणाम करके, जनता को प्रणाम करके, भगवान सूर्य को प्रणाम करके, दिशाओं को प्रणाम करके, गुरु, माताओं, जनता को प्रणाम करके राम-जानकी गादी पर विराजित हुए। और विश्व को रामराज्य देते हुए सब से पहले राम के भाल में तिलक किया। रामराज्य का स्थापन हुआ। भगवान की ललित नरलीला। समय मर्यादा पूर्ण होने के बाद जानकी ने दो पुत्रों को जनम दिया लव-कुश। दूसरी बार जानकी के वनवास की कथा तुलसी 'मानस' में लिखते नहीं है क्योंकि ये विवाद है, दुर्वाद है। तुलसी संवाद के महापुरुष है। रामराज्य की छबि दे कर तुलसी ने कथा को रोक दी। उसके बाद कागभुशुंडि के पास गरुड गया और गरुड को भुशुंडि ने कथा सुनाई। गरुड के प्रश्नों पर भुशुंडि अपना जीवनचरित्र का गान करते हैं और जीवन कथा सुनाते-सुनाते भुशुंडिने ये कथा भी सुनाई कि मैं उज्जैन गया था। मैंने गुरुअपराध किया तब शंकर कुपित हुए। और तब भुशुंडि कहते हैं, मेरे सम्यक् बोधवाले गुरु ने मुझे इसी शाप से मुक्त करने के लिए महाकाल के मंदिर में 'रुद्राष्टक' गाया-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं ।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं ।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।

आखिर में कागभुशुंडि के चरणों में गरुड ने सात प्रश्नों रखे है। और सातों प्रश्नों के उत्तर बुद्धपुरुष ने दिये है। उसके बाद रामकथा को भुशुंडि ने गरुड के सामने विराम दिया। याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज से कथा का विराम किया ये स्पष्ट नहीं है। भगवान महादेव ने पार्वती से कहा, देवी, आपकी जिज्ञासा से मैंने रामकथा सुनाई। अब कुछ आपको सुनना है? पार्वती ने कहा, प्रभु, मैं कृतकृत्य हो गई। मेरे सब कलेश नष्ट हो चुके है। महादेव ने कथा को विराम दिया। कलिपावनावतार गोस्वामीजी अपने मन को सुनाते हुए हमको आखिरी संदेश देते हैं कि ये कलियुग है, इसमें हम जैसों के लिए और साधन सरल नहीं है, एक ही मात्र कृपासाध्य साधन है, राम को गाओ, रामनाम स्मरो। राम को सुनो। चारों परम आचार्यों ने अपनी-अपनी पीठ से कथा को विराम दिया। और इस पवित्र तीर्थ से इस रामकथा 'मानस-रुद्राष्टक' को विराम दे रही है।

भाव कभी एक रूप में नहीं रह सकता। भाव तत्त्व नहीं है। तत्त्व कभी बदलता नहीं है। तत्त्व को बदलने में कोई कामयाब नहीं होता सिवाय परमेश्वर। आप और हम पृथ्वी, आकाश नहीं बदल सकते। लेकिन भाव बदलता है। कभी भाव ज्यादा होता है, कभी कम। कभी उपर की ओर जाता है, कभी अधोगमन करता है। कभी क्षणिक, कभी शाश्वत का रूप लेता है। भाव का स्वभाव ही है बदलते रहना। और तत्त्व का अस्तित्वमूलक स्वभाव है न बदले। हमारे जीवन में ऐसा नहीं होता है कि एक आदमी के प्रति थोड़ा भाव होता था अब नहीं रहा, भाव बदल गया। कायम करने के लिए भाव को तत्त्व में बदलना होगा।

मानस-मुशायरा

मैंने बिस्तर बांध लिया है गालिब,
कहां रहते है वो लोग, मुझे वहीं जाना है।
– गालिब

आग है, पानी है, मिट्टी है, हवा है मुझ में।
तब तो मानना पड़ेगा कि खुदा है मुझ में।
–किशनबिहारी नूर

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।
– दुष्यंतकुमार

कोई उम्मीद जब नहीं दिखती,
तब मुझे तू दिखाई देता है।
– राज कौशिक

संत परम हितकारी, जगत मांही।
प्रभुपद प्रकट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी।
– ब्रह्मानंदस्वामी

कज़ां को रोक देती है दुआ रोशन ज़मीरों की।
भला मंजूर है अपना तो कर खिदमत फ़कीरों की।

•

तमाम उम्र इस सोच में मैं हंस नहीं पाया।
वो मुझको छोड़कर कितना रोया होगा?

कवचिदन्यतोऽपि

श्री हनुमानजी वैराग्य का घनीभूत स्वरूप है

'हनुमानजयंती' के अवसर पर मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

बाप! सब से पहले आज के परम पावन पर्व पर 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' श्री हनुमानजी की पावन जन्म जयंती के अवसर पर ये अजर-अमर चेतना को मेरा प्रणाम। और 'रामचरित मानस' में लिखा है, ये शिव का अवतार है, 'वानराकार विग्रह पुरारी।' वानर के आकार में स्वयं पुरारी पधारे हैं। और 'मानस'कार का कहना है कि शिव 'सकलकलागुणधाम' है। इसीलिए जिसमें सकल कला, विद्या, गुण, विध-विध विधाएं हैं उसकी वंदना करने को हम यहां साल भर इंतज़ार करते हैं कि कब इन हमारे बीच में घूमती-फ़िरती ये विद्यामयी चेतनाएं यहां आए। अने गुजरातीमां कहुं तो अमे एने पगे लागीए। तो आज आप सभी आदरणीया हेमाजी, 'महाभारत' के कर्ण, करंजीयासाहब; खरसाणीसाहब नहीं आ सके, आप उनके पुत्र है, आप पधारे; दादाजी जपान से उड़कर आए, आप का स्वागत। गुलामसाहब, आपने आप की गायकी से सब को भर दिया साहब! नमन! और आप के तबले की थाप ने ख़बर नहीं हमारी पीठ पर थाप लगा दी कि ये विद्या भी विद्या भी है। मैं सलाम करता हूं। और-

याद रखा है, तो अब भूल भी सकता हूं तुम्हें।

दिल पर सिर्फ़ आप का ही हक नहीं, हमारा भी हक है। दुनिया में कहीं भी रहते और साहब, कहीं ईधर-उधर होते तो हमें फोन करके सलाम करते और ऐसे ही हां बापू, दिन खाली है। कहो तो बैठ जाउं फ्लाईट में? और साहब, एटलान्टा को याद किया माइकल जेक्शन की श्रद्धांजलि। गुलामअलीसाहब एटलान्टा आए। जहां मैं ठहरा था, एक नन्हीं-सी मेहफ़िल थी। मैंने साहब को पूछा कि माईकल गया है; ये भी एक सूर का आदमी था। तो हम उसको श्रद्धांजलि दें? मुझे कहे बापू, यह तो होना ही चाहिए। खांसाहब, आप की अध्यक्षता में हमने माईकल को अंजलि दी थी। 'मिले सूर मेरा तुम्हारा।' क्या हो गया दुनिया को कि हम बेसूर होते जा रहे हैं! असुर भी होते जा रहे हैं! ये सूर की वंदना के लिए, शब्द की वंदना के लिए, जिसके पास जो कला है उसकी वंदना के लिए हम एक साल इंतजार करते हैं। खांसाहब, आप को कोई पारिवारिक या तो कोई भी कारण होगा; लेकिन आप आए और समय पर आ गये और आपने दो पंक्तियां सुनाई भी। सम पर आ गये। वाह-वाह! आप तो उसी बोली में ही बोलेंगे साहब! और-

सम: शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो: ।
शीतोष्णसुखदु:खेषु सम: सङ्गविवर्जित: ।।

पूरी 'गीता' सम पर है। जिसको सम पर रहना हो उसको 'गीता' पढ़नी चाहिए। और पूरे 'उपनिषद' 'सत्' पर है। जिसको सत्य की दीक्षा लेनी है उसको 'उपनिषद' में प्रवेश करना चाहिए। और 'रामचरित मानस' जो सर्व का स्वीकार करता है, उसमें 'सब' शब्द बहुत है। इसीलिए जिसको सब को गले लगाना है उसको 'रामचरित मानस' में प्रवेश करना चाहिए। तो, मेरी दृष्टि में ये सम और सब, 'सब नर करहिं परस्पर प्रीती।' 'रामचरित मानस' का सूत्र है। ये हो गई तिहाई।

तो आप सब आए। आदरणीय धर्मेन्द्रजी नादुरस्त तबियत के कारण न आ सके। लेकिन अपनी प्रसन्नता व्यक्त की है। आदरणीया हेमाजी ने वह अवोर्ड कुबूल किया। तो बाप, तीन दिन से कैलास गुरुकुल में इतनी सालों से जो चल रहा है ये, उन्नीसवां अस्मिता पर्व मनाया गया। आप सब जानते हैं कि कितने मूर्धन्य विद्वान विचारक स्वाध्याय करके हम सब को निचौड़ देने के लिए आते हैं। और तीनों दिन की सभी सभाएं बहुत प्रसन्नता प्रदान करती रही। मैं सब को नमन करता हूं कि आप सब भी इतने व्यस्त हैं और फ़िर भी आप यहां आ जाते हैं। रघुवीरभाई, उन्नीस-उन्नीस 'अस्मितापर्व' में अखंड आप की हाजरी है! और आप को अपने देश का इतना बड़ा ज्ञानपीठ अवोर्ड प्राप्त हुआ है इसके लिए आप की वंदना तो हमनें की ही लेकिन हनुमानजी से प्रार्थना करूं कि आप को और बल मिले। आप ओर लिखे और उसका फल पूरे संसार को मिले। ईच्छा तो थी कि भीखुदानभाई रुके। लेकिन उसकी तबियत आते ही थोड़ी बीगड़ी। इसीलिए वो चले गये। वर्ना हमारी इच्छा थी कि भीखुदानभाई को पद्मश्री मिला है तो यही 'अस्मितापर्व' में ही हम उनकी भी वंदना कर लें। लेकिन हो गई। अब और कुछ नहीं कहते हुए मुझे भी आज जल्दी है इसीलिए बाकी तो ये मेरा होमग्राउन्ड है साहब! मैं यहां तो कैसी भी बेटिंग कर सकता हूं! और कोई गेंद नहीं पकड़ सकेगा! ये मेरा होमग्राउन्ड है। इसका मुझे गौरव है। इसका अहंकार नहीं है लेकिन इसका अभिमानमुक्त गौरव है। इसका एक आनंद है।

आप सभी का सन्मान करता हूं। आदर देता हूं। सभी वर्ग के लोगों ने सरकार से लेकर अनेक-अन्य विभागों ने, तमाम लोगों ने इसमें बहुत आहूतियां दी है। इन सब को भी मैं स्मरूं। अभी-अभी तीन छोटे-छोटे पुस्तक और गुरुपूर्णिमा पर कुछ बोला गया हो उसका एक इंग्लीश में पुस्तक जो बना, उसका लोकार्पण हुआ। मैं नीतिनभाई को, उसकी टीम को और रोहित और उसकी टीम को बधाई देता हूं कि आपने केवल केवल सेवा भाव से ये किया। मेरे भाई-बहन! मैंने कई बार कहा, मैं फ़िर एक बार दोहराऊं कि मैं मेरे दादा के चरण में बैठकर इस तलगाजरडा की मिट्टी में, एक मिट्टी के घर के कोने में बैठकर जिसके पास से मुझे रामकथा प्राप्त हुई है। 'लंकाकांड' तक मैं पढ़ पाया। फ़िर दादा नादुरस्त हो गये। फ़िर उसने सिर पर हाथ रख दिया कि हो गया पूरा। लेकिन जब 'सुन्दरकांड' मैं पढ़ रहा था। 'सुन्दरकांड' का जब आरंभ हुआ और-

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

'सुन्दरकांड' के मंगलाचरण का ये जो मंत्र-श्लोक उसका जो वो चल रहा था। मेरे मन में आया कि हनुमानजी 'सकल गुण निधान' है, तो मैं दादाजी को पूछुं कि ये 'सकल गुण' कौन-से हैं? लेकिन ये बुद्धपुरुष अंतर्यामी होते हैं। एनी पाघडीना त्रण आंटामां भूत पण होय छे, वर्तमान पण होय छे अने भविष्य पण होय छे। ये मेरा अनुभव है। मेरे लिए मेरे दादा बुद्धपुरुष है। मेरे सद्‌गुरु भगवान है। मैंने कोई ईश्वर को देखा नहीं है और देखना भी नहीं है। मुझे कोने में विश्वदर्शन हो चुका है। तो बाप! मैं पूछुं इससे पहले बता दिया, आश्रित को जिज्ञासा करने का अधिकार है। हमारे शास्त्रों ने ये अधिकार दिया है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'; 'अथातो भक्तिजिज्ञासा'; 'अथातो धर्मजिज्ञासा' हम कर सकते हैं। लेकिन मैंने बहुत कभी पूछा भी नहीं। लेकिन दादा को ही जब इच्छा होती थी कि ये खोलने की जरूरत है तो कृपा से मुखर होते थे। और उसने कहा कि सकल गुण का अर्थ समझ ले। सीधा शुरू हुआ! मैंने कहा, मेरे मन में भी यही था कि हनुमानजी तो शिव है। उसमें क्या नहीं है? लेकिन 'सकलगुणनिधान' का मतलब क्या? कितने गुण? सकल मीन्स? सब? कितने

गुण? और इतने गुणों को कैसे हम पचा पाये? कैसे जीवन में उतार पाये? हमारे जैसों के लिए असंभव है।

तो, दादा जो बोले थे वो उनकी ही प्रसादी मेरी बोली में व्यक्त करूं। कहा कि बेटा, सकल गुण मीन्स नौ गुण। अने आपणे गुजरातीमां कहेवाय छे, न बोल्यामां नव गुण। बोले ना तो उसमें नौ गुण। दादा ने मुझे नौ गुण बताये कि और छोड़ लेकिन नौ गुण का ध्यान रखना। हनुमानजी का यह नौ गुण है। और नौ वैसे सकल भी तो हो जाता है। पूर्णांक है। नौ तत्त्वत: पूर्णांक है। इसीलिए सकल भी हो गया। 'सकलगुणनिधानं।' फ़िर एक शब्दप्रयोग जो आया वो ये था कि ये केवल गुण नहीं है। ये हनुमान के स्वभाव के लक्षण है। तो बाप! मैं नौ की गिनती आप के सामने प्रसादी के रूप में पेश करके मेरी बात पूरी करूंगा। एक, हनुमानजी का प्रथम गुण वो तो 'सकलगुणनिधानं' है। बार-बार मैं कहूंगा। लेकिन प्रथम गुण जो दादा ने सार निकालकर मुझे बताया था कि थोड़ा कुछ हम कर सके उसकी कृपा से ऐसा जो गुण जो बताया उसमें पहला गुण मैं पूरे समाज को कहना चाहता हूं। मेरे भाई-बहन, पहला गुण है अभय। निर्भय और अभय में बहुत अंतर है। निर्भयता उपकरणों से आती है। दो रिवोल्वरवाले बगल में चले। आठ सिक्योरीटी पीछे हो, आठ आगे हो। चारो ओर से घेरा हो। निर्भयता तो ऐसी कि मैं सुरक्षित हूं। चारो ओर घेरा है। लेकिन ये निर्भयता है, खुद की अभयता नहीं है। अंदर तो जी फ़फ़ड़ता है कि कभी भी कोई वो कर दे! अभय वो है जिसको शस्त्र की जरूरत नहीं। केवल जिसका शास्त्र में प्रवेश हो गया हो वो अभय है। और अभय की एक सटीक परिभाषा मेरे सामने तब आई कि बेटा, अभय उसको कहते हैं कि हम किसीसे न ड़रे वो तो अभय है ही लेकिन हम से भी कोई न ड़रे ये पक्की अभयता है। छोटा-सा छोटा बच्चा भी अभय होकर बात कर सके बड़ों से। एक शे'र कहना चाहता हूं खांसाहब!

जिस बुलंदी से ईन्सान छोटा लगे,
उस बुलंदी पे जाना नहीं चाहिए।

वहां से ईन्सान छोटा लगता है और ये छोटे ईन्सान को पूछो तो वो कहता है, बुलंदी पर है वो भी मुझे छोटा लगता है! क्योंकि वो भी छोटा दिखने लगता है। तो बाप, छोटे से छोटा-सा बच्चा भी जैसे पतंजली का सूत्र है 'तत्संनिधो वैर त्याग:।' अहिंसक कौन कि जिनके निकट आनेवाला वैर छोड़ दे, शत्रुता से मुक्त हो जाय वो ही तो अहिंसा की प्रतिष्ठा है। तो अभय ये हनुमंत का पहला स्वाभाविक गुण है। दूसरा, हनुमानजी का स्वाभाविक गुण और माँ जानकी का दिया हुआ वरदान उसका एक गुण है अजरता। अजर; अब हनुमानजी बूढ़े न हो मेरी दृष्टि में तो ये बूढ़ा नहीं हो सकता लेकिन शरीर है तो कुछ हुआ भी हो। कई लोगों ने ऐसे चित्र भी निकाले हैं! कनुभाई बैठे है यहां। वड़ील खांटसाहब भी बैठे है। उसने बहुत अच्छा चित्र प्रदर्शन गुरुकुल में किया। और एक-एक नई दृष्टि भी गुरुकुल में आपने प्रदान की। मैं बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं। तो कई लोगों ने हनुमानजी के ऐसे चित्र अंकित किए हैं कि हनुमानजी बूढ़े है! लकवाग्रस्त हो! और दुनिया को सलाम करूं! क्या करूं? सलाम के बिना कोई चारा नहीं! हम मानसरोवर गए तो उसके बाद किसीने ऐसे हनुमानजी विकलांग हो बिलकुल आपने देखा होगा और 'रामचरित मानस' पढ़ रहे हैं! हाथ-पैर गिल गए हैं! हनुमान मेरा कभी ऐसा हो सकता है? हनुमान क्या? जिसके पास कोई भी विद्या और कला हो उसको बूढ़ा होने का अधिकार नहीं है। वो वृद्ध हो जाये वो समाज के कल्याण में नहीं है। तो हनुमानजी का अजर रूप ये उसका स्वाभाविक लक्षण है। ये तो चिरंजीवी है, अमर भी है। लेकिन अजर मानी कोई भी कार्य करने में उसने कभी भी अपनी शक्ति की क्षीणता महसूस नहीं की। ये उनकी अजरता है। ये हम थोड़ा-थोड़ा अर्जित कर सकते हैं। दूसरा-अमर। ये तीसरा स्वाभाविक लक्षण अमर। अमर मानी रोज-रोज जिसकी प्रतिष्ठा बढ़ती चले और हम उसको याद ही करते रहे, छोड़ ही ना पाए वो ही अमरता है। वही सच्ची अमरता है। बाकी तो मृत्यु ध्रुव है, मरना ही होगा।

तो श्री हनुमानजी का तीसरा लक्षण है स्वाभाविक अमरता। चौथा लक्षण है जो मुझे बहुत प्रिय है और वो है अखंड विश्वास। कल जय ने ठीक कहा कि हम परमात्मा पर भरोसा करते हैं लेकिन ये भी याद रखना कि भगवान भी हमारे पर भरोसा रखकर बैठा है। और हम तो उसका भरोसा तोड़ भी दे क्योंकि ईन्सान है। लेकिन वो कभी भरोसा नहीं तोड़ता। तो विश्वास जो है; यद्यपि विश्वास को बहुत गालियां दी जाती है! विश्वास अंध भी

हो सकता है। हो भी सकता है। लेकिन 'विश्वास' शब्द अमृत से निकला हुआ शब्द है। 'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' ये विश्वास है। विश्वास तो होना ही चाहिए मेरे भाई-बहन। ये मेरा व्यक्तिगत विचार है। विश्वास के बिना कैसे जी पाएं? विश्वास को विद्वानों ने, चिंतकों ने बहुत गालियां बकी है! लेकिन शायद विश्वास के क्षेत्र में उसका प्रवेश भी न हुआ हो! हो सकता है। लेकिन विश्वास एक गज़ब वस्तु है। श्री हनुमानजी का विश्वास के विग्रह है ये। तो भरोसा, विश्वास, यकिन, 'वो आएंगे जरूर, जो उन तक ख़बर गई।' उस तक यदि तेरी आवाज़ गई है तो वो जरूर आयेंगे। तेरी आवाज़ जानी चाहिए। और दोनों जगह तुझे तेरी आवाज़ में भी विश्वास होना चाहिए और वो आयेगा उस पर भी विश्वास होना चाहिए। तेरी आवाज़ यदि कमजोर है तो क्या करूं? तो क्या करूं? गुलामअलीसाहब ने गाया है। तो बाप! अभय, अजर, अमर चौथा स्वाभाविक गुण है विश्वास और पांचवां स्वाभाविक गुण है हनुमानजी का वैराग्य। वैराग्य के ये घनीभूत स्वरूप माने गये हैं। पद्मश्री दुलाभाया काग लखे छे-

राजसत्तामां एणे भड़का भाळ्या
पछी धूळमां धामा नाख्या।
जमजळ अंगद नल नील सुग्रीव कोई नो रियां,
पण हजी लगी हनुमान कायम बेठो कागडा।

ए गामनी बहार बेठो छे वैराग्य। वैराग्य का घनीभूत स्वरूप। वैराग्य वगर ज्ञान सफळ नथी थतुं। माहिती के रूप में रहे। तसल्ली न आये, ओड़कार न आये। डकार न आये। मैं गुजराती में बोलने लगा। होम ग्राउन्ड है। वैराग्य ये हनुमानजी का पांचवां स्वाभाविक लक्षण है। छठ्ठा लक्षण, मुझे बहुत प्रिय है, हम कर तो नहीं पाते, हम जीव है नहीं कर पाते, जंतु है साहब! लेकिन छठ्ठा लक्षण है हनुमानजी का वो है, सब के बीच में रहते हुए असंग रहना। असंग शस्त्रेण दृढेन छित्वा।' असंग रहना। ये बहुत कठिन है। और सब के बीच में रहकर असंग रहना वो ही तो साधना की कसौटी है। कोई हिमालय चले जाय, कोई गिरिकंदरा में चले जाए तो तो फ़िर असंग ही रहना पड़ता है। मुझे श्री हनुमानजी के जीवन में असंगता ये बहुत बड़ा स्वाभाविक गुण दिखता है। तो वैराग्य, ज्ञान, अजर, अमर और अभय पांच और ये असंगता छ:। असंगता और अनासक्ति में तफ़ावत है। मिलाना नहीं चाहिए। कई बार आदमी अकेला बैठा हो वो असंग ही है। कोई उसको नहीं मिलता वो किसीको नहीं मिलता। लेकिन आसक्ति न गई हो! ज्यादा भड़कती भी हो! एकांत खतरनाक है। ये तो जिसको पचा वो ही पचा पाता है। बाकी एकांत बड़ों-बड़ों को गिरा देता है। तो उसी समय ये जरूरी है। जीव अनासक्त हो। गांधीबापू ने 'गीता' की पूरी परिभाषा अनासक्तियोग में बदल ड़ाली। अनासक्ति ये हनुमानजी के जीवन में है; मुझे कोई प्रसंग या कुछ कहना नहीं है। आप सब जानते हैं हनुमंत-चरित्र को। तो वैराग्य, विश्वास, अजर, अमर, अभय, असंगता, अनासक्ति और ये सब हो प्रेम न हो तो? इसीलिए सत्य, प्रेम और करुणा ये जो नगीनबापा उसको प्रस्थानत्रयी कहते हैं। ये प्रस्थानत्रयी का केन्द्रबिंदु है ये प्रेम। श्री हनुमानजी प्रेमपूर्ण हैं। अनासक्त आदमी कभी-कभी प्रेम से दूर चला जाता है। असंग आदमी कभी उसको कोई असर नहीं होती। तथाकथित वैरागी प्रेम का नाम लेने से भड़कता है!

जाओ रे... ये है प्रेम की ड़गरियां,
जाओ रे जोगी तुम जाओ रे...

गुरुजनों के पास थोड़ा गा ले तो थोड़ा आशीर्वाद मिल जाये और हम भी सम पर रह सके और सूर में रह सके। ये तो ठीक है आनंद कर रहे हैं।

तो बाप, तथाकथित वैरागी प्रेम नहीं कर सकता, चीड़-चीड़ करता है! तो बाप, जीवन प्रेमपूर्ण होना चाहिए। क्यों रूमी नाचा? ये कोई स्टेज प्रोग्राम देता था रूमी? आसमां उसका पंड़ाल हो जाता था। धरती उसका स्टेज बन जाती थी और उनकी खुद की अदाएं उनके संगीत के वाद्य बन जाते थे। अपनी ही अदाएं और वो नाचता रहा, झूमता रहा। प्रेम चाहिए साहब। ये असंगता, अनासक्ति, अजर, अमर ये ये सब जरूरी है, बहुत जरूरी है। इसीलिए मैंने पहले गिनाये। लेकिन प्रेम न हो तो प्राण नहीं है इनमें कहीं। और हनुमानजी प्रेमपूर्ण है।

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना ।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।
अजर अमर गुणनिधि सुत होहू ।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।

प्रेम होना चाहिए। प्रेम परमात्मा है। ये जमीनवाली ईधर-उधर की बातें प्रेम की हो तो ठीक है, छोड़ो! बाकी प्रेम के बारे में खुमार बाराबंकवीसाहब का एक शे'र याद आ रहा है-

ये मिसरा नहीं है ये वज़ीफ़ा है मेरा,
खुदा है मोहब्बत, मोहब्बत खुदा है।

तो हनुमानजी प्रेमपूर्ण है। प्रेम होना चाहिए बाप! और मुझे लगता है कि 'बिनु बिस्वास भगति नहीं तेहिं।' विश्वास के वगैर ये प्रेम आगे बढ़ता नहीं। परमात्मा को, मेरे राम को क्या पसंद है? मैं 'रामचरित मानस' गाता हूं, समझकर गाता हूं। मीन्स मेरे दादा ने मुझे दिया है इसीलिए गाता हूं। उसमें कहीं भी नहीं लिखा है कि राम को पूजा प्रिय है। पूजा तो साहब चार आनामां थइ जाय! हमणां में एक मिनिटमां करी लीधी! एक फूल अबीलमां-गुलालमां अडाडीने मूकी दीधुं! पूजा तो बहु सस्ती छे। प्रेम कठिन है, मोहब्बत कठिन है। और इसीलिए मोहब्बत की ओर प्रेम की निंदा होती है! घणां रही ग्या छे। ये बाबा तो हिंमत कर रहा है! उसको मैं कहूं कि चौपाई बोलो तो हेमाजी, वो तो फिल्म का गीत ही गाता है! एक वैष्णव समारंभ था। वैष्णव और वो पक्के पुष्टीमार्गीय वैष्णव। उसमें तो कितने आचार्य कितने-कितने! मैं भी ड़रूं कुछ बोलने में गलती न हो जाय! ड़रूं मीन्स इतने बड़े लोगों के साथ अपना वो; तो ये बाबा को मेरे साथ खुरशी पर बिठाया कि आप भी बैठो मेरे साथ। मैंने विनोद किया कि आप कुछ दो शब्द बोलेंगे? मैंने पहली बार उसको सुना। तो कहे कि मैं बोलूं? मैंने कहा, बोलो। मैंने भी साहस किया! उसके लिए तो सहज था। मेंने कहा, 'संकट से हनुमान छुड़ावै!' अब जो होना हो हो! हाथ से तो निकल गई गैंद! अब जो होना हो हो। और क्या हो भगवान जाने! तो उसने माईक पकड़ा और मुझे कहे बापू, मैं दो चौपाई सुनाना चाहता हूं। मैंने कहा, अच्छा किया भाईसाहब कि चौपाई। और उसने फ़िलम का गीत गाया!

अकेले है, चले आओ, जहां हो...

ये उनकी चौपाई! और परमात्मा के लिए ये गीत गाओ तो मेरे लिए भी ये चौपाई है। प्लीज़, आप चौपाई को फ्रेम में नहीं बांध सकते। चौपाई मंत्र नहीं है, महामंत्र है। विधि का लेख बदल सकती है, मेरा अनुभव है।

कहां आवाज़ दे तुम को,
जहां हो, चले आओ, जहां हो ...

और -

काबे से बुत्कदे से कभी बज़्मेजाम से,
आवाज़ दे रहा हूं तुझे हर मकाम से।

कहां भेद है?

कबीरा कुआ एक है, पनिहारी अनेक,
बरतन सब न्यारे भये, पानी सब में एक।

तो, बाबा ने ये चौपाई सुनाई! एक दूसरी भी सुनाई थी! और आप यकीन रखीये, यहां फ़िलम गाने-बाने का कोई प्रोग्राम नहीं है। सीत्तेर वर्षे आ बधुं हवे सारुं न लागे! पण हुं शून्य गणतो ज नथी! नको। शून्य काढ़ी नाखो! शून्यमां छे शुं? शून्य का क्या करे? सात। सातवीं श्रेणी में पढ़ता हूं ऐसा ही मानता हूं। सात श्रेणी तक मैंने प्रायमरी स्कूल में पढ़ाया है। इसलिए सात मेरा अंक है। और सात का अंक 'रामचरित मानस' है। और सात से उपर आठ में जाना चाहता ही नहीं। मैं हाईस्कूल में जाना चाहता नहीं, हायर सेकन्डरी में जाना चाहता नहीं। युनिवर्सिटी को सलाम! वो मुझे प्रवचन के लिए बुलाये ये कलियुग का प्रभाव है! युनिवर्सिटी और मुझे बुलाये, तीन बार फ़ैल होनेवाला!

लो हवे कैलास खुद ने कांध पर।
राह सौनी क्यां सुधी जोया करो?
प्रेममां जे थाय ते जोया करो।
दर्दने गाया विना रोया करो।

दर्द को गाओ नहीं ईधर-उधर। रोना सीख लो।

कबीरा रोना छोड़ दे रोने से कर प्रीत।
क्योंकि, बीन रोए किस पाईये प्रेम पीयारे मीत।

तो मैं तीन बार फैल हुआ हूं। मुझे कल बहुत बल मिला ये जानकर कि जय भी तीन बार फैल हुआ। जो फैल होने से ड़रता है वो मृत्यु भी नहीं जीत सकता और जीवन भी नहीं जीत सकता। साहब! जो हारना सीख जाये उसका कदम चुमती है जीत। विजयश्री उनके पीछे-पीछे दौड़ती है। तो महाराजजी ने दो चौपाई सुना दी! पूरा वैष्णवसमाज स्तब्ध था कि ये क्या है? ये बाबा कौन आया है? बस दो चौपाई! तो जब भी गाते हैं तो ये ऐसे ही गाते हैं!

तो बाप! श्री हनुमानजी महाराज प्रेममूर्ति है।
निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।

तो श्री हनुमानजी है अभय; श्री हनुमानजी है अजर, अमर, असंग, अनासक्त। हनुमानजी है वैरागी। हनुमानजी है विश्वास और हनुमानजी का आठवां लक्षण है प्रेमपूर्णता। 'रामचरित मानस' में कहीं भी नहीं कहा कि मेरी पूजा करो। पूजा एक मिनट में हो जाती है। चार आने में हो जाती है। मुश्किल है प्रेम। और मेरे रामकथा का राम कहता है-

राम हि केवल प्रेमु पिआरा।

ये हमारी पुरानी प्रथा है रामकथा गाने की।

राम हि केवल प्रेमु पिआरा।
जानि लेउ जो जाननिहारा।।

हनुमानजी महाराज प्रेममूर्ति है। ये उनका स्वाभाविक लक्षण है, गुण है। और आख़िरी गुण जो दादा के मुख से मैंने सुना था। और वो है-

कर्पुर गौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारं।

ये करुणामूर्ति है। ये उनका नौवां लक्षण। ये फ़िर मैंने इतनी बात तो मेरे मन से जान गये कि मैं कुछ कहना, कुछ पूछना चाहता था कि 'सकलगुण' मानी क्या? तो दादा ने ही अपने ही आप सार निकालकर नौ बता दिए हैं। तब जाकर हिंमत आई तो मैंने पूछा, नव में से थोड़ा कम करके बता सकते हैं? क्योंकि शायद हमारे लिए न भी हो। तो उसने कहा भाग्येशभाई, एक काम कर नव। मैंने कहा नव मीन्स क्या? तो उसने कहा, रोज नया रहना। जीवन में कभी वासी मत होना। परिस्थिति कुछ भी आये, अवस्था कुछ भी हो, स्थिति कुछ भी हो, लोकमान्यता कुछ भी हो, ईश्वरमान्यता कुछ भी हो, दुनिया की कोई भी स्थिति आए उसमें रोज नूतन रहना। 'दिने-दिने नवंनवं नमामि नंद संभवम्।' नव रहना। ये मुझे अच्छा लगा कि ओर हो कि नहीं बाकी मैं आप को भी कहूं, रोज नूतन रहना। वासी-वासी! हमारे लिए रोज सूरज नया उगता है। पूर्णिमा का चांद कभी पुराना हुआ? नदी हमारे लिए रोज नई बहती है। रोज नया पानी लाती है। और हम ख़बर नहीं! एक किसान बीज बोने गया। तो एक आदमी गया। क्या बोते हो? तो किसान ने कहा, नहीं कहूंगा। मेरा खेत, मेरा बीज, मैं किसान। तू पूछनेवाला कौन? क्या बोते हो? बोले, नहीं कहूंगा। तो वो बुद्धिमान था। उसने कहा, कोई बात नहीं। दो दिन में पता लग जायेगा कि तूने क्या बोया है? बीज बोया, बारीश हुई, दो दिन में पता लग जायेगा। तो उसने कहा, मुझे बोना ही नहीं है! कोई देख लेतो क्या हो जाय? ऐसी निरुत्साहिता न आनी चाहिए। खास करके युवानो में।

मेरे देश का युवान, मेरी सुंदर पृथ्वी का युवान। 'युवास्वात् साधु युवाध्यापकः।' आ उपनिषदनो आदेश छे। आदमी युवान होना चाहिए। खांसाहब, कितनी उम्र है मुझे ख़बर नहीं। अल्लाह करे इतनी ही कायम रहे। लेकिन मुस्कुराते हुए गाते हैं। ये सब विद्या के उपासक रोज नूतन लगते हैं। तो आख़िरी मंत्र मेरे लिए था कि नौ गुण में ये नव रहना ये उनका भी सार है। ये आख़िरी अर्क है बाप, नव रहना, रोज नवीन रहना, आनंद में रहना, बस इतना करना। आप सब को हनुमान जयंती की फ़िर बार-बार बधाई। आप सब आये। हम शब्दों में क्या कहे? कह भी सकते हैं शब्दों में लेकिन शब्दों की कमजोरी होती है। शब्द का एक सीमित क्षेत्र होता है। जितना मौन काम कर सकता है, जितना आंखें काम कर सकती है, इतना तो कोई काम नहीं कर सकता है। मोहब्बत तो आंख में रहती है। ठाकुर तो आंखों में रहता है। तो मैं बहुत खुश हूं कि आप आये और हमारी वंदना आपने कुबूल की और हम आप के बहुत आभारी है। फ़िर वो ही बात दोहराउं एक साल का हम इंतजार करते हैं कि मेरे देश की सभी कला, सभी विद्या की वंदना करे; हनुमानजी प्रसन्न हो। हनुमानजी इस वंदना से प्रसन्न हो। हमें कुछ चाहिए नहीं। क्या कमी रखी है दाता ने? अमारो राज कीधा करे के बापू, आवी स्थिति थया पछी क्यांक माताजीनी पासे कांइ मांगीए ने तो तो भोंठा पडीए, राज! बहु मने गम्युं बाप! तारी वातेय गमे छे के हवे अपेक्षा राखीए तो तो एम लागे के आ आपणे ओल्युं कर्युं! इसलिए बाप! खुश रहो। मारे पाछुं अत्यारे जवानुं छे। चार दिवस ज वच्चे होय छे। आज कुंभ मां महास्नान छे। बहु ज मोटुं स्नान छे। स्नानमां तो हुं नथी जवानो। मुझे पहुंचना है। आप भी तो अपने-अपने स्थान में जाने के लिए वो है। पुनः एक बार अपनी बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

हंसके बोला करो, बुलाया करो।
बाप का घर है, आया-जाया करो।

('हनुमानजयंती-२०१५' पर तलगाजरडा (गुजरात) में प्रस्तुत मोरारिबापू का अवसरोचित उद्बोधन : दिनांक २२-४-२०१६)

'अस्मितापर्व' का उद्घाटन करते हुए मोरारिबापू एवं अन्य महानुभाव

काव्यायन : सर्वश्री मेगी असनानी, यावर कादरी, खलील धनतेजवी, शकील कादरी, चिनु मोदी, हर्ष ब्रह्मभट्ट

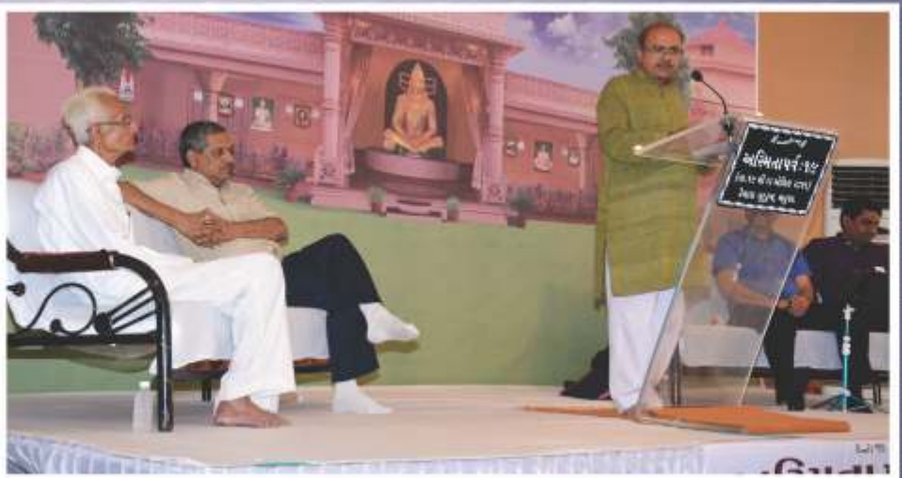

कविकर्मप्रतिष्ठा : सर्वश्री करसनदास लुहार, मुकुल चोकसी, रमेश महेता, रईश मनीआर

वाचिकम् : 'दरियालाल' प्रस्तुति - चिंतन पंड्या एवं कलाकारवृंद

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री गौरांग व्यास, धरमशी शाह, दीपक दोशी, रघुवीर चौधरी

वाचिकम् : 'आनंदतरंग' प्रस्तुति - अर्चन त्रिवेदी एवं कलाकारवृंद

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री सुभाष भट्ट, मुझफ्फर अली, जय वसावडा

ग्रंथ-लोकार्पण : सर्वश्री हरिश्चंद्र जोशी, नीतिन वडगामा, मोरारिबापू

ग्रंथ-लोकार्पण : सर्वश्री हरिश्चंद्र जोशी, रोहित पंखानिआ, मोरारिबापू

श्री नागजी पटेल
शिल्पकला (कैलास ललितकला अवॉर्ड)

श्री पी. खरसाणी (स्वीकार : परिवारजन)
गुजराती लोकनाट्य-भवाई (नटराज अवॉर्ड)

श्री यझदी करंजिया
गुजराती रंगभूमि (नटराज अवॉर्ड)

श्री पंकज धीर
भारतीय टेलिविझन श्रेणी (नटराज अवॉर्ड)

श्री धर्मेन्द्र (स्वीकार : हेमा मालिनी)
भारतीय फिल्म (नटराज अवॉर्ड)

पंडित श्री सुरेश तलवलकर
शास्त्रीय तालवाद्य संगीत (हनुमंत अवॉर्ड)

पंडित श्री उल्हास कशालकर
शास्त्रीय कंठ्य संगीत (हनुमंत अवॉर्ड)

सुश्री हेमा मालिनी
शास्त्रीय नृत्य-भरत नाट्यम् (हनुमंत अवॉर्ड)

उस्ताद गुलाम अली
गज़लगायकी (हनुमंत अवॉर्ड)

पंडित श्री देबू चौधरी
शास्त्रीय वाद्यसंगीत-सितार (हनुमंत अवॉर्ड)

शास्त्रीय कंठ्यसंगीत प्रस्तुति : पंडित श्री उल्हास कशालकर

शास्त्रीय वाद्यसंगीत प्रस्तुति : पंडित श्री देबू चौधरी

नृत्यनाटिका 'मीरां'- प्रस्तुति : सुश्री हेमा मालिनी एवं कलाकारवृंद

नृत्य प्रस्तुति : कु. रुद्री नीलेश भट्ट

नृत्य प्रस्तुति : कु. कृपाली वावडिया

रुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ।।
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं । गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।।
करालं महाकाल कालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोऽहं ।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं । मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं ।।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा । लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ।।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ।।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।।
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी । सदा सज्जनान्ददाता पुरारी ।।
चिदानंद संदोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ।।
न तावत्सुखं शान्ति संतापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ।।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ।।

॥ जय सीयाराम ॥